अग्निशिखा

अखिल भारतीय पत्रिका

सितम्बर २०१६

सुरक्षा

अग्निशिखा सितम्बर २०१६ वर्ष ४७, अंक २, पूर्णांक ५५३

विषय-सूची

सुरक्षा

(श्रीमां के वचन)

सम्पादकीय		३
बीमारियों से सुरक्षा		६
मनोवैज्ञानिक सुरक्षा		१२
सुरक्षा के आध्यात्मिक तथा गुह्य उपाय		१९
भागवत सुरक्षा		३३

'पुरोधा'

दैनन्दिनी		४६
क्या ईश्वर नहीं रहे?		४९
नीरवता में...		५०
मेरी जिन्दगी में फ्रेडी का आना	वन्दना	५१

अग्निशिखा का वार्षिक शुल्क :
एक वर्ष–१८०रु.; तीन वर्ष–५२०रु.; पांच वर्ष–८६०रु.।
पत्रिका हर महीने की ४ तारीख को प्रेषित की जाती है।

श्रीअरविन्द सोसायटी की मासिक पत्रिका
Website : www.aurosociety.org

सम्पादिका : वन्दना
प्रकाशक : प्रदीप नारंग, श्रीअरविन्द सोसायटी, पॉण्डिचेरी—६०५००२
मुद्रक : स्वाधीन चैटर्जी, श्रीअरविन्द आश्रम प्रेस, पॉण्डिचेरी

सम्पादकीय टिप्पणी :

पृथ्वी पर जीवन किसी अभियान से कम नहीं है और हमारी जीवन-झोली में जहां सम्मोहन हैं वहां खतरे भी कम नहीं हैं। अतः, इस 'आनन्ददायक तथा खतरनाक जगत्' में व्यक्ति का सुरक्षा के लिए खोज करना असंगत नहीं है। हमेशा की तरह 'प्रकृति' ने हमें सुरक्षा के कई मानदण्ड पहले से ही प्रदान कर दिये हैं, लेकिन हम प्रायः अपने अन्दर बने बचाव के उन साधनों से अभिज्ञ नहीं होते जिनका हम क्रमिक रूप में विकास कर सकते हैं। अन्ततः, जो भगवान् की ओर मुड़ गया है और जिसने अपना सारा जीवन 'समर्पण की वेदी' पर न्योछावर कर दिया है उसे अपने जीवन-पथ पर विशेष 'सुरक्षा' का सम्बल प्राप्त होता है। साथ ही यह भी सच है कि ये सभी साधन सामान्यतः अपनी सीमा में कार्य करते हैं; हां, विरल तथा विशेष अवसरों पर ये पूरी तरह क्रिया कर सकें इसके लिए विशेष आन्तरिक शर्तों को निभाना होता है।

इस अंक में हम विशेषकर श्रीमां ने इस जटिल विषय 'सुरक्षा' पर क्या कहा है, उस पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

मुखपृष्ठ—प्रीति घोष द्वारा बनायी पेंटिंग

श्रीमां ने कहा है कि संख्या 8 "गुह्य रचना" के साथ-साथ 'दोहरे घेरे (आन्तरिक तथा बाह्य शत्रुओं से रक्षा)' की भी प्रतीक है

मुखपृष्ठ पर अंकित दो राजहंस हमें भगवती मां के साथ हमारे सम्बन्ध की याद दिलाते हैं। हमारी अन्तरात्मा वह राजहंस है जिसकी दृष्टि ऊर्ध्वमुखी है और जिसे मां राजहंसिनी आगे बढ़ाये लिये जती है, साथ ही मां पथ में हमारी रक्षा करती और उसे निरन्तर आलोकित करती रहती है।

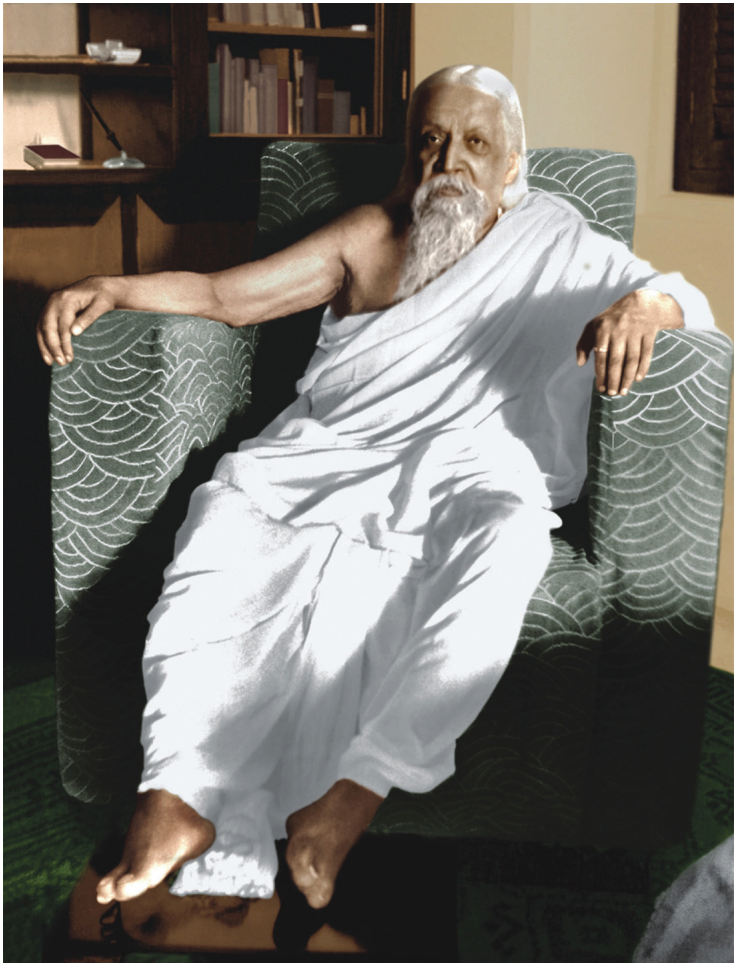

कृपा और सुरक्षा सदा तुम्हारे साथ हैं। जब तुम किसी आन्तरिक या बाह्य कठिनाई या तकलीफ में हो तो उसे अपने ऊपर हावी मत होने दो; 'भागवत शक्ति' की शरण में जाओ जो रक्षा करती है। अगर तुम हमेशा श्रद्धा और निष्कपट सच्चाई के साथ ऐसा करो तो तुम अपने अन्दर किसी ऐसी चीज को खुलता पाओगे जो सभी सतही गड़बड़ों के बावजूद हमेशा निश्चल और शान्त रहेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. २५०

उन्हीं के साथ सर्वोत्तम घटता है...

तू पूर्ण ज्ञान, निरपेक्ष चेतना है। जो तेरे साथ युक्त होता है वह जब तक ऐक्य बना रहे, सर्वज्ञ होता है। लेकिन इस अवस्था को पाने से पहले भी, वह जिसने अपने-आपको अपनी सत्ता की पूरी सच्चाई के साथ, समस्त सचेतन इच्छा के साथ तुझे सौंप दिया है, जिसने अपने अन्दर और अपने सारे प्रभाव-क्षेत्र में तेरी अभिव्यक्ति और तेरे प्रेम के दिव्य विधान की विजय में सहायता करने और हर प्रकार का प्रयास करने का निश्चय किया है, वह अपने जीवन में सभी चीजों को बदलते हुए देखता है और सभी परिस्थितियां तेरे विधान को प्रकट करना शुरू करती हैं और उसके समर्पण में सहायता करती हैं। उसके लिए हमेशा वही होता है जो सबसे अच्छा, उत्तमोत्तम है; और अगर उसकी बुद्धि में अभी तक कुछ अन्धकार है, कोई अज्ञानमय कामना है जो उसे कभी-कभी उसके बारे में तुरन्त अभिज्ञ होने से रोकती है, तो वह देर से हो या जल्दी, यह जान लेता है कि एक हितकर शक्ति उसे, स्वयं अपने-आपसे भी सुरक्षित रखती हुई मालूम होती है और उसके खिलने और रूपान्तरित होने के लिए, उसके सम्पूर्ण परिवर्तन और सार्थक्य के लिए सबसे अधिक अनुकूल स्थितियां प्राप्त करती है। जैसे ही तुम इस बारे में सचेतन और निश्चित हो जाते हो, उसके बाद तुम भावी परिस्थितियां या घटनाएं जो मोड़ लेंगी उनके बारे में चिन्ता नहीं कर सकते। हर क्षण तुम जो कुछ करते हो पूर्ण शान्ति के साथ करते हो और वही करते हो जिसे तुम उस क्षण अच्छे-से-अच्छा समझते हो और तुम्हें यह विश्वास होता है कि इसमें से सर्वोत्तम ही निकलेगा, भले वह परिणाम वही न हो जिसकी हम अपनी सीमित तर्क-बुद्धि के द्वारा आशा करते थे।

इसी कारण, हे प्रभो, हमारा हृदय हलका है और हमारा विचार विश्राम में है, और इसीलिए हम पूर्ण विश्वास के साथ तेरी ओर मुड़ते हैं और शान्ति के साथ कहते हैं :

तेरी इच्छा पूरी हो, उसी के अन्दर सच्चा सामञ्जस्य सिद्ध होता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १, पृ. ६३

बीमारियों से सुरक्षा

मनुष्य तो स्थूल शरीर में ही अपने घर की तरह सुरक्षित रहता है; शरीर उसका रक्षा-कवच है। कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने शरीर के लिए तिरस्कार से भरे होते हैं और समझते हैं कि मृत्यु के बाद जब स्थूल शरीर नहीं रह जायेगा तब उनकी दशा बहुत कुछ सरल हो जायेगी, सुधर जायेगी। परन्तु, वास्तव में, स्थूल शरीर तुम्हारा किला और तुम्हारी आश्रय-स्थली है। जब तक तुम इस किले के अन्दर हो तब तक विरोधी जगत् की शक्तियों को तुम्हारे ऊपर किसी तरह का सीधा कब्जा करने में कठिनाई होती है। दुःस्वप्न क्या हैं? ये हैं प्राणमय जगत् में तुम्हारे भ्रमण। और किसी दुःस्वप्न की पकड़ में आते ही सबसे पहले तुम अपने स्थूल शरीर में दौड़ जाते हो और अपनी साधारण भौतिक चेतना में आकर होश संभालते हो। परन्तु प्राणमय शक्तियों के जगत् में तुम एक अजनबी हो; यह एक मानचित्र-विहीन समुद्र है और तुम्हारे पास न तो दिग्दर्शक यन्त्र है, न पतवार। तुम नहीं जानते कि कैसे और किधर चलना चाहिये और पग-पग पर वही करते हो जो नहीं करना चाहिये। जैसे ही तुम इस जगत् के किसी भी राज्य में प्रवेश करते हो वैसे ही वहां की सत्ताएं तुम्हें घेर कर जो कुछ तुम्हारे पास हो उसे हथिया लेना, जो कुछ चूस सकें उसे चूस लेना और तुम्हारी सम्पत्ति को अपना शिकार बना लेना चाहती हैं। यदि तुम्हारे अन्दर से कोई तीव्र ज्योति और शक्ति प्रसारित न हो रही हो तो स्थूल शरीर के बिना तुम इस जगत् में इस तरह फिरते रहोगे मानों अत्यन्त सर्द और ठिठुरा देने वाले वातावरण से अपने को बचाने के लिए तुम्हारे पास एक कोट भी नहीं, एक मकान तक नहीं जो तुम्हें आश्रय दे सके, यहां तक कि तुम्हें ढांकने के लिए त्वचा तक न हो, तुम्हारी स्नायुएं खुली हुई हों। कुछ ऐसे भी लोग होते हैं जो कहते हैं : "मैं इस शरीर में कितना दुःखी हूं," और वे मृत्यु को दुःख से छुटकारा पाने का साधन मानते हैं! किन्तु मृत्यु के बाद तुम्हें वे ही प्राणमयी परिस्थितियां मिलती हैं और उन्हीं शक्तियों का खतरा रहता है जिनके कारण तुम इस जीवन में क्लेश पाते थे। स्थूल शरीर का विघटन तुम्हें प्राणमय जगत् के खुले मैदान में जाने के लिए बाध्य कर देता है और तुम्हारे पास अपनी रक्षा के लिए कोई साधन नहीं रहता, स्थूल शरीर अब नहीं रहता कि तुम सुरक्षा के लिए उसमें दौड़ जाओ।

तुम्हारी आन्तरिक अवस्था तथा रोग का आक्रमण

तुम्हारी आन्तरिक अवस्था रोग का कारण तब बनती है जब उसमें कोई प्रतिरोध या विद्रोह हो अथवा जब तुम्हारे अन्दर कोई ऐसा भाग हो जो भागवत संरक्षण का प्रत्युत्तर नहीं देता; अथवा उसमें कोई ऐसी चीज भी हो सकती है जो इच्छापूर्वक, जान-बूझकर विरोधी शक्तियों को अन्दर बुलाती है। तुम्हारे अन्दर इस प्रकार की कोई मामूली-सी गति हो तो वह भी पर्याप्त है; विरोधी शक्तियां तुरत तुम पर चढ़ आती हैं और उनका आक्रमण बहुधा रोग का रूप धारण कर लेता है।...

तुम्हारे शरीर में और तुम्हारे चारों ओर रोग की सम्भावनाएं सदा बनी रहती हैं; तुम्हारे अन्दर या तुम्हारे चारों तरफ सब प्रकार की बीमारियों के कीटाणु या जीवाणु मंडराते रहते हैं। तुम्हें जो रोग वर्षों से नहीं हुआ उसके तुम एकाएक शिकार क्यों हो जाते हो? तुम कहोगे कि इसका कारण "प्राण-शक्ति का मन्द पड़ जाना" है। परन्तु यह मन्दता कहां से आती है? यह सत्ता में किसी प्रकार का असामञ्जस्य होने से, भागवत शक्तियों के प्रति ग्रहणशीलता का अभाव होने से आती है। जब तुम उस शक्ति और ज्योति से, जो तुम्हारा धारण-पोषण करती हैं, अपने-आपको काट लेते हो तब यह मन्दता आती है। तब जिसको चिकित्सा-शास्त्र "रोग के लिए अनुकूल क्षेत्र" कहते हैं वह तैयार हो जाता है और कोई चीज इसका फायदा उठा लेती है। सन्देह, निरुत्साह, विश्वास का अभाव, स्वार्थ के साथ अपनी ओर ही मुड़ना—ये चीजें हैं जो ज्योति और दिव्य शक्ति से तुम्हें काट देती हैं और आक्रमण के लिए लाभकर होती हैं। तुम्हारे बीमार पड़ने का असली कारण यही है, न कि रोग के जीवाणु।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ५४-५५, ६३-६४

अपने शरीर को आत्मसात् करने का समय दो

मनुष्य के साधारण जीवन में शृंखला-भंग का उत्तरोत्तर बढ़ते जाना ही नियम है। मनुष्य की मनोमय और प्राणमय सत्ता तो वैश्व शक्तियों की गतियों का भरसक अनुसरण करती है और जगत् के आन्तरिक रूपान्तर तथा विकास की धारा उन्हें कुछ दूर तक आगे बढ़ा देती है; किन्तु शरीर, जो अत्यधिक जड़-प्राकृतिक नियमों से बंधा हुआ होता है, बहुत ही सुस्त चाल से चलता है। कुछ वर्षों के बाद, सत्तर या अस्सी, सौ या दो सौ वर्षों बाद,—और यही

शायद अधिक-से-अधिक अवधि है,—यह शृंखला-भंग इतना अधिक बढ़ जाता है कि बाह्य सत्ता टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। मांग और उत्तर में अन्तर होने के कारण तथा शरीर की उत्तरोत्तर बढ़ती हुई असमर्थता और प्रत्युत्तर देने की अक्षमता के कारण मृत्यु की घटना आ उपस्थित होती है। योग-साधना करने से सृष्टि के आन्तरिक रूपान्तर की धीमी, पर अनवरत प्रक्रिया अधिक तीव्र और द्रुतगामी हो जाती है, किन्तु बाह्य रूपान्तर की चाल साधारण जीवन जितनी ही रहती है। फलतः, यदि सावधानी न रखी जाये और ऐसा संरक्षण न प्राप्त कर लिया जाये जिसके द्वारा शरीर को यथासाध्य आन्तरिक प्रगति के साथ–साथ चलने में सहायता मिले, तो योग-साधना करने वाले की आन्तरिक और बाह्य सत्ता के बीच का यह असामञ्जस्य और भी बढ़ता जाता है। इतना होने पर भी शरीर का स्वभाव ही ऐसा है कि वह तुम्हें पीछे की ओर खींचता है। यही कारण है कि बहुतों को हमें यह कहना पड़ता है: "खींचो मत, जल्दबाजी मत करो; शरीर को अनुसरण करने के लिए तुम्हें समय देना ही पड़ेगा।" कुछ साधकों को तो वर्षों रोके रखना और अधिक साधना करने से अथवा अधिक आगे बढ़ने से मना करना आवश्यक हो जाता है। कभी-कभी इस असमतोलता से बचना असम्भव हो जाता है; और तब तुममें गड़बड़ पैदा होती ही है जिसके भिन्न-भिन्न स्वरूप होते हैं; यह तुम्हारे प्रतिरोध के स्वभाव पर और तुमने जितनी सावधानी रखी है या जितनी अवहेलना की है उसके परिणाम पर निर्भर होता है। यह भी एक कारण है जिससे यह होता है कि जब-जब प्रगति की ओर तीव्र गति होती है तब-तब उसके बाद प्रायः निरपवाद रूप से स्थावरता का काल आता है, और इस काल में, उन लोगों को, जिन्हें सावधान नहीं कर दिया गया है, ऐसा मालूम होता है मानों वह केवल जड़ता, अवरोध और निरुत्साह का काल हो, जिसमें समस्त प्रगति रुक गयी हो और वे व्याकुल होकर सोचने लगते हैं: "अरे! यह क्या हो रहा है? मेरा समय तो नष्ट नहीं हो रहा? कुछ भी उन्नति नहीं हो रही।" परन्तु सच तो यह है कि यह आत्मसात् करने का काल होता है; यह विश्राम इसलिए लिया जाता है कि शरीर अपने-आपको अधिकाधिक खोल दे और अधिक ग्रहणशील बन जाये तथा आन्तर चेतना जिस भूमिका में ऊपर उठ चुकी है उसके अधिक समीप पहुंच जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ९८-९९

सूक्ष्म भौतिक आवरण

रोग चाहे किसी कारण से क्यों न हुआ हो, वह चाहे स्थूल-भौतिक हो या मानसिक, बाह्य हो या आन्तरिक, उसे भौतिक शरीर पर असर करने से पहले सत्ता के उस स्तर में प्रवेश करना पड़ता है जो शरीर के चारों ओर लिपटा हुआ है और उसकी रक्षा करता है। इस सूक्ष्मतर स्तर के भिन्न-भिन्न धर्मों में भिन्न-भिन्न नाम हैं,—कोई उसे आकाश-शरीर कहता है तो कोई नाड़ी-कवच। यह है तो सूक्ष्म शरीर, फिर भी लगभग दृष्टिगम्य है। किसी अत्यन्त उष्ण और उबलते हुए द्रव्य के चारों ओर जो घने कम्पन दिखायी देते हैं यह उन्हीं के जैसा घना होता है। यह भौतिक शरीर में से ही पैदा होता है और उससे सटा हुआ रह कर उसे चारों ओर से ढांके रहता है। बाह्य जगत् के साथ समस्त व्यवहार इसी माध्यम द्वारा होता है और इस कवच-शरीर पर आक्रमण करके इसका भेदन करने पर ही कोई चीज स्थूल शरीर तक असर पहुंचा सकती है। यदि यह कवच पूर्ण रूप से सशक्त और सुरक्षित हो तो तुम बुरे-से-बुरे रोगों से आक्रान्त स्थानों में भी, यहां तक कि प्लेग और हैजा के स्थानों में जाकर भी, सर्वथा रोगमुक्त रह सकते हो। जब तक यह समग्र और सम्पूर्ण रहता है, इसकी बनावट अखण्ड रहती है और इसके तत्त्व पूर्ण सन्तुलन में रहते हैं तब तक यह रोग के समस्त सम्भावित आक्रमणों से हमारी सम्पूर्ण रक्षा करता रहता है। एक ओर तो यह कवच-शरीर जड़-प्रकृति के आधार पर या यों कहें कि स्थूल-भौतिक द्रव्य के नहीं, बल्कि जड़-प्राकृतिक अवस्थाओं के आधार पर बना है, दूसरी ओर इसके निर्माण-तत्त्व हमारी मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं के कम्पन हैं। यह दूसरा पार्श्व शान्ति, समचित्तता और विश्वास, स्वस्थता में श्रद्धा, क्षोभरहित विश्रान्ति की अवस्था और प्रफुल्लता तथा तेजोमय हर्ष के तत्त्वों द्वारा बना होता है, और ये ही तत्त्व इस कवच-शरीर को शक्ति और सार प्रदान करते हैं। यह कवच-शरीर अत्यन्त संवेदनशील माध्यम है और इसमें प्रतिक्रियाएं सहज और तुरन्त होती हैं; यह सब तरह के सुझावों को तुरन्त अंगीकार कर लेता है और वे इसकी अवस्था में द्रुत परिवर्तन कर सकते हैं, इसका ढांचा भी लगभग बदल सकते हैं। इस पर बुरे सुझावों का अत्यधिक असर पड़ता है; उसी प्रकार यदि कोई अच्छा सुझाव हो तो वह भी उसी बल के साथ इस पर अच्छाई की दिशा में काम करता है। निराशा और निरुत्साह का इस पर बहुत बुरा असर होता है; वे मानों इसमें अन्दर तक

जगह-जगह छेद कर देते हैं, इसे दुर्बल और प्रतिरोध-शक्तिविहीन बना देते हैं, फलतः विरोधी आक्रमणों के लिए एक सहज मार्ग खुल जाता है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १००-०१

स्नायविक-प्राणिक आवरण को अक्षत रखना

प्राणिक शरीर एक प्रकार के आच्छादन के रूप में भौतिक शरीर को घेरे रखता है और उसकी घनता लगभग उतनी होती है जितनी कि गर्मी के स्पन्दनों की जो उस समय दिखायी देते हैं जब दिन बहुत गर्म होता है। और यही वह चीज है जो सूक्ष्म शरीर और अत्यन्त स्थूल प्राण-शरीर के बीच, मध्यस्थ है। यही चीज सब प्रकार की छूत, थकावट, अशक्तता और यहां तक कि दुर्घटनाओं से शरीर की रक्षा करती है। अतएव, यदि यह आवरण पूरी तरह अक्षत रहे तो यह प्रत्येक वस्तु से तुम्हारी रक्षा करता है, परन्तु कोई थोड़ा-सा अतिप्रबल भावावेग, मामूली थकावट, कोई असन्तुष्टि अथवा किसी प्रकार का कोई मानसिक आघात उसको मानों खरोंच देने के लिए पर्याप्त होता है और बिलकुल थोड़ी-सी खरोंच किसी भी प्रकार की चीज के भीतर प्रवेश करने का द्वार बन जाती है। चिकित्सा-विज्ञान भी अब यह स्वीकार करता है कि यदि तुम पूर्ण प्राणिक सन्तुलन की स्थिति में रहो तो तुम्हें कोई बीमारी नहीं लगती या हर हालत में तुम छूत की बीमारी से एक प्रकार से सुरक्षित रहते हो। यदि तुम्हारे अन्दर यह सन्तुलन हो, यह आन्तरिक सामञ्जस्य हो जो आवरण को अक्षुण्ण बनाये रखता है तो यह हर चीज से तुम्हारी रक्षा करता है। ऐसे लोग होते हैं जो बिलकुल साधारण जीवन यापन करते हैं, जो यह जानते हैं कि कैसे सोना चाहिये, कैसे खाना चाहिये और उनका स्नायविक आवरण इतना अभेद्य होता है कि वे सभी खतरों में से मानों आंखें मूंद कर बाहर निकल आते हैं। यह एक ऐसी क्षमता है जिसे मनुष्य अपने अन्दर उत्पन्न कर सकता है। यदि कोई अपने आवरण के दुर्बल स्थल के विषय में सचेतन हो जाये तो कुछ मिनटों की एकाग्रता, शक्ति का आवाहन, आन्तरिक शान्ति उस स्थल को ठीक कर देने, स्वस्थ बना देने तथा अनिष्टकारी चीज के विलीन होने के लिए पर्याप्त है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ७४

इस लिफाफे में कुछ पंखुड़ियां होती हैं, वे शक्ति से भरपूर होती हैं, और अगर तुम इसे अपने पास रखो तो मेरे साथ तुम्हारा सम्पर्क बना रहता है। तो, अगर तुम इससे सहायता मांगो तो आन्तरिक सम्पर्क जुड़ जायेगा और तुम्हें उत्तर मिल जायेगा।

*

वह अपनी जेब में यह लिफाफा रखे और जब कभी वह हताशा का अनुभव करे तो लिफाफे पर बने चित्र को देख ले।

Champaklal Treasures —श्रीमां

मनोवैज्ञानिक सुरक्षा

वास्तव में, विशुद्ध अहंकारपूर्ण हेतु से भी शान्त-स्थिर बने रहने तथा अपनी दुश्चिन्ता को घटा कर कम-से-कम कर देने का सबसे उत्तम साधन है अच्छा काम करना, सच्चा होना, सरल होना और न्यायपरायण होना। और इसके साथ-साथ यदि कोई बिना लेखा-जोखा किये और स्वार्थ-बुद्धि के निष्काम और अनासक्त हो सके, तो फिर उसके लिए वास्तव में सुखी होना सम्भव हो जायेगा।

तुम अपने कर्मों से उत्पन्न वातावरण को अपने साथ, अपने चारों ओर, अपने अन्दर लिये फिरते हो, और तुम जो कुछ करते हो वह यदि सुन्दर, भला और सुसमञ्जस हो तो तुम्हारा वातावरण भी सुन्दर, अच्छा और सुसमञ्जस बना रहेगा, दूसरी ओर, यदि तुम क्षुद्र स्वार्थपरता में, अविवेक-पूर्ण आत्म-हितचिन्तन में, निष्ठुर अशुभ इच्छा में निवास करो तो तुम अपने जीवन के प्रत्येक मुहूर्त उसी में सांस लोगे और उसका अर्थ होगा, दुःख, निरन्तर बेचैनी; उसका अर्थ होगा, ऐसी बीभत्सता जो अपनी ही बीभत्सता के कारण निराशा में पैठ जाती है।

और यह न सोचो कि इस शरीर को छोड़ देने पर तुम इस वातावरण से मुक्त हो जाओगे; बल्कि शरीर तो अचेतना के एक परदे जैसा है जो दुःख-क्लेश की तीव्रता को कम कर देता है। यदि तुम शरीर के संरक्षण से रहित होकर अत्यन्त स्थूल प्राणिक जीवन में चले जाओ तो दुःख-कष्ट बहुत अधिक तीव्र हो जायेगा और फिर तुम्हें ऐसा सुयोग नहीं मिलेगा कि जो बदलने-लायक है उसे बदल दिया जाये, जो संशोधन-योग्य है उसे संशोधित कर दिया जाये, एक अधिक उच्च, अधिक सुखमय और अधिक ज्योतिर्मय जीवन तथा चेतना की ओर अपना उद्घाटन किया जाये। तुम्हें अपना काम यहीं शीघ्र कर लेने की कोशिश करनी चाहिये, क्योंकि वास्तव में वह यहीं हो सकता है।

मृत्यु से किसी चीज की आशा मत करो। जीवन ही तुम्हारे लिए मुक्ति है।

बस, जीवन में रह कर ही तुम्हें अपने को रूपान्तरित करना चाहिये। इस पृथ्वी पर ही तुम उन्नति कर सकते हो और इस पृथ्वी पर ही सिद्धि पा सकते हो। इस शरीर में ही तुम 'विजयश्री' को अधिकृत कर सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. २११-१२

भय बीमारी के लिए द्वार खोल देता है

मैं एक आदमी को जानती थी जो इतना अधिक डरा हुआ था कि उसे हैजा हो गया! उसके पड़ोस में हैजा फैला हुआ था। वह इतना अधिक डर गया कि बिना किसी और कारण के वह बीमार हो गया। उसे हैजा होने का कोई और कारण न था: उसे केवल भय के कारण हैजा हुआ था। और यह बहुत आम बात है; किसी महामारी में अधिकतर रोगियों के साथ ऐसा ही होता है। भय के कारण द्वार खुल जाता है और तुम्हें बीमारी लग जाती है। जिनमें भय नहीं है वे आजादी से घूम-फिर सकते हैं और साधारणतः उन्हें कुछ नहीं होता। फिर जैसा कि मैंने कहा है: हो सकता है कि तुम्हारे मन में भय न हो, तुम्हारे प्राण में भी कोई भय न हो, लेकिन ऐसा कौन है जिसके शरीर में भय न हो?... बहुत ही कम। शरीर को भय से मुक्त करने के लिए कड़ी साधना की जरूरत होती है। कोषाणु स्वयं कांपते हैं। केवल साधना के द्वारा, योग के द्वारा तुम इस भय को जीत सकते हो। लेकिन यह एक तथ्य है कि भय के कारण तुम किसी भी रोग को पकड़ सकते हो, दुर्घटना को भी बुला सकते हो। और फिर देखो, एक दृष्टि से हर चीज छूत से आ सकती है। मैंने एक आदमी को देखा था जिसे किसी और का घाव देख कर डर के मारे घाव हो गया। उसे सचमुच ही हो गया।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १८४-८५

कामनाओं से सच्चा संरक्षण

मनुष्य का यह सूक्ष्म-भौतिक आवरण एकदम अक्षत हो सकता है और सभी बीमारियों और दुर्घटनाओं से उसे बचाने के लिए अद्‌भुत ढंग से कार्य कर सकता है, और फिर भी उसके साथ-ही-साथ, वह मनुष्य कामनाओं से भरपूर हो सकता है, कारण, कामनाएं दूसरे क्षेत्र की चीजें हैं। कामना कोई भौतिक चीज नहीं है, कामना एक प्राणिक वस्तु है, और यह आवरण प्राण की अपेक्षा अधिक स्थूल है: यह प्राण को प्राणिक जगत् के सम्पर्क में आने तथा वहां से उसके समस्त आवेगों को ग्रहण करने से नहीं रोक सकता। स्वभावतः ही, जिस व्यक्ति ने आत्म-विजय पा ली है, जिसने अपने चैत्य पुरुष को पा लिया है, जो निरन्तर इस चैत्य पुरुष की चेतना में निवास करता है, जिसने अन्तरस्थ दिव्य 'उपस्थिति' के साथ एक प्रकार का पूर्ण सम्बन्ध अथवा

कम-से-कम एक प्रकार का सतत सम्बन्ध स्थापित कर लिया है वह ज्ञान, ज्योति, सौन्दर्य, पवित्रता के एक वातावरण से आवृत होता है जो कामनाओं से बचाने वाला सबसे श्रेष्ठ संरक्षण है, परन्तु फिर भी यह सम्भव है कि यदि मनुष्य सर्वदा सावधान न रहे तो कामना अन्दर प्रवेश कर सकती है, क्योंकि हम कहते हैं कि वह बाहर से आती है। हो सकता है कि मनुष्य ने अपने अन्दर किसी कामना को जीत लिया हो, पर फिर भी वह एक छूत की बीमारी की तरह बाहर से आ सकती है; परन्तु ज्योति, ज्ञान और पवित्रता के इस आवरण के होने पर कामना अपनी शक्ति खो बैठती है और वह एक अन्ध और तात्कालिक प्रत्युत्तर जगाने वाली क्रिया के रूप में नहीं आती, उस समय मनुष्य यह देखता है कि क्या घटित हो रहा है, उस शक्ति के बारे में सचेतन हो जाता है जो घुसना चाहती है, और वह चुपचाप—जब वह इच्छित नहीं होती—एक आन्तरिक क्रिया कर सकता और अन्दर आने वाली कामना का बहिष्कार कर सकता है। बस, यही एकमात्र सच्चा संरक्षण है : एक जाग्रत् चेतना, शुद्ध और सतर्क, अर्थात्, जो सोती नहीं, चीजों के बारे में सचेतन हुए बिना उन्हें अन्दर आने नहीं देती।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ४, पृ. ३८७

विचार की शक्ति

कौशल के साथ भेजा हुआ और निभाया हुआ विचार सादृश्य के द्वारा अंधेरे में लिपटे हुए बहुत-से मनों में ज्ञान की झलक को चेता सकता है और इस तरह उन्हें क्रमिक विकास की ओर आगे बढ़ा सकता है। वह बीमार के लिए मध्यस्थ बन कर उसे नीरोग करने के लिए आवश्यक प्राणिक शक्तियों को खींच सकता है। वह किसी प्रिय मित्र पर निगरानी रखते हुए उसे बहुत-से संकटों से बचा सकता है—चाहे मानसिक सूचना द्वारा उसे सावधान करके और उसके अन्तर्भास द्वारा या सीधे संकट के कारण के ऊपर क्रिया करके।

दुर्भाग्यवश, इससे उलटी बात भी सच्ची है, और बुरे विचारों में भी क्रिया करने की शक्ति की कमी नहीं होती।

हम कल्पना नहीं कर सकते कि हम बुरे विचारों, घृणा, प्रतिशोध, ईर्ष्या, द्वेष, दुर्भावनापूर्ण विचारों, कठोर निन्दा, संकीर्ण मूल्यांकन को अपने से बाहर भेज कर या अपने-आप ग्रहण करके कितना नुकसान पहुंचाते हैं...।

हम सब जानते हैं कि निन्दात्मक गप्पों को सुनना या फैलाना कितना अनिष्टकर है। लेकिन केवल शब्दों से परहेज करना काफी नहीं है, हमें विचारों से भी परहेज करना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. १०६-०७

शिक्षा और संस्कार का महत्त्व

... अगर इन्द्रियों का विधिवत् और ज्ञानपूर्वक संस्कार किया जाये तो बच्चे में संसर्ग-दोष के कारण जो निकृष्ट, सामान्य और असंस्कृत चीजें आ गयी हैं वे धीरे-धीरे दूर की जा सकती हैं, और साथ ही, यह संस्कार उसके चरित्र पर भी सुखद प्रतिक्रियाएं उत्पन्न करेगा। क्योंकि जिस व्यक्ति ने सचमुच एक समुन्नत रुचि विकसित की है वह, स्वयं उस सुरुचि के कारण ही, भद्दे, बर्बर या हीन ढंग से कार्य करने में अपने को असमर्थ अनुभव करेगा। यह सुरुचि, अगर यह सच्ची हो तो, व्यक्ति के अन्दर एक प्रकार की महानता और उदारता ले आयेगी जो उसके कार्य करने की पद्धति में सहज-स्वाभाविक ढंग से प्रकट होगी और उसे बहुत-सी नीच और उलटी क्रियाओं से अलग रखेगी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. २१

व्यक्ति को जानना चाहिये कि कैसे जिया जाये

उदाहरण के लिए, किसी खेल में, जब तुम खेलते हो, तो ऐसा होता है *(संकेत)*, और फिर यह किसी बिन्दु के स्पन्दनों की तरह होता है, वह बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है, बढ़ता जाता है, जब तक कि अचानक, धड़ाम नहीं हो जाता!... एक दुर्घटना। और यह इस तरह का सामूहिक वातावरण है; हम आकर उसे देखते हैं, तुम खेल के बीच में हो—बास्केट-बॉल, फुटबॉल या कोई और खेल—हम उसे अनुभव करते हैं, देखते हैं, वह तुम्हारे चारों ओर एक तरह का धुआं-सा पैदा कर देता है (गरमी की भाप, जो कभी-कभी आया करती है, कुछ-कुछ वैसा), और तब वह एक स्पन्दन का रूप ले लेती है, इस तरह, इस तरह, अधिकाधिक, अधिकाधिक, अधिकाधिक, जब तक कि अचानक सन्तुलन बिगड़ नहीं जाता: किसी की टांग टूट जाती है, कोई गिर पड़ता है, किसी के मुंह पर गेंद की चोट लग जाती है, इत्यादि। और जब ऐसा हो तो पहले से कहा जा सकता है कि ऐसा होने वाला है। लेकिन

किसी को उसका भान नहीं होता।

फिर भी, कम गम्भीर चीजों में भी, तुममें से हर एक के चारों ओर व्यक्तिगत रूप से ऐसी चीज होती है जो बहुत व्यक्तिगत और बहुत शान्त आवरण होने की जगह, जो तुम्हें ऐसी सब चीजों से बचाये रखे जिन्हें तुम नहीं पाना चाहते... मेरा मतलब है कि तुम्हारी ग्रहणशीलता सुविवेचित और सचेतन हो जाती है, अन्यथा तुम ग्रहण नहीं कर सकते; केवल तभी जब तुम्हारे अन्दर यह सचेतन अत्यन्त शान्त वातावरण हो, और जैसा कि मैं कहती हूं, जब वह अन्दर से आये (यह कोई ऐसी चीज नहीं है जो बाहर से आती हो), केवल तभी जब ऐसा हो तो तुम जीवन में, अर्थात्, दूसरों के बीच, हर क्षण सभी परिस्थितियों में सुरक्षित रूप से चल सकते हो...

अन्यथा यदि कोई संक्रामक चीज जिसकी छूत लग सकती है, उदाहरण के लिए, क्रोध, भय, रोग, कुछ बेचैनी, तो तुम निश्चय ही उसके चंगुल में होते हो। जैसे ही वह यूं करना शुरू करे *(संकेत)*, तो यह ऐसा है मानों तुम उन जैसे सभी स्पन्दनों को बुलाते हो ताकि वे आकर तुम्हें पकड़ लें।

आश्चर्य की बात यह है कि मनुष्य कितने अचेतन रूप में अपना जीवन यापन करते हैं; वे यह जानते ही नहीं कि कैसे जिया जाये... यह पहली चीज है जो बच्चों को सिखानी चाहिये : वे यह सीखें कि कैसे जिया जाये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. १६२-६३

मनोवैज्ञानिक वातावरण महत्त्वपूर्ण है

भगवान् उन्हीं को संरक्षण दे सकते हैं जो पूरे दिल से भगवान् के प्रति निष्ठावान् हैं, जो सचमुच साधना-भाव से रहते हैं और अपनी चेतना और तल्लीनता को भगवान् में और भगवान् की सेवा में लगाये रहते हैं। उदाहरण के लिए, कामना, अपनी पसन्द और सुविधाओं पर आग्रह, ढोंग और कपट और मिथ्यात्व की सभी गतिविधियां भागवत संरक्षण के मार्ग में खड़ी हुई बहुत बड़ी रुकावटें हैं। अगर तुम भगवान् पर अपनी इच्छा लादना चाहो तो यह ऐसा है मानों तुम एक बम को अपने ऊपर गिरने के लिए बुला रहे हो। मैं यह नहीं कहती कि चीजें इस तरह होने ही वाली हैं; लेकिन अगर लोग सचेतन और बहुत जागरूक नहीं हो जाते और सच्चे आध्यात्मिक जिज्ञासु के भाव से काम नहीं करते तो ऐसा होना बहुत सम्भव है। अगर यहां का

मनोवैज्ञानिक वातावरण भी बाकी संसार के जैसा ही बना रहे, तो संकट, कष्ट और विनाश लाने वाली अन्धकारमयी 'शक्तियों' को यहां घुसने से रोकने के लिए संरक्षण की कोई निश्चित दीवार नहीं रह जाती।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १३, पृ. १२८-२९

बुरे कार्य की छूत से बचाव करना

हम छूत के रोगी का संसर्ग पसन्द नहीं करते, बल्कि सावधानी के साथ उससे बचते हैं; सामान्यतया ऐसे व्यक्ति को पृथक् रखा जाता है जिससे वह रोग फैलने न पाये। परन्तु बुरे कार्य की और बुरे व्यवहार की छूत, दुराचार, मिथ्यात्व और जो कुछ निकृष्ट है उस सबकी छूत किसी भी बीमारी की छूत से बहुत अधिक भयंकर होती है और इससे बड़ी सावधानी से बचने की जरूरत है। तुम्हें अपना सबसे अच्छा मित्र उसे मानना चाहिये जो तुमसे कहता है कि मैं किसी बुरे या घिनौने कार्य में भाग नहीं लेना चाहता, जो तुम्हारे अन्दर निम्न प्रलोभनों का सामना करने का साहस प्रदान करता है; ऐसा व्यक्ति ही सच्चा मित्र है। ऐसे व्यक्ति से ही मेल-जोल रखना चाहिये, न कि उससे जो तुम्हारे साथ थोड़ा हंस-खेल ले और तुम्हारी बुरी प्रवृत्तियों को सबल बनाये। बस इतना ही। अब मैं अधिक विस्तार में नहीं जाना चाहती और आशा करती हूं कि मैंने जो कहा है उसे वे समझ गये होंगे जो मेरे मन में हैं।

वस्तुतः, तुम्हें केवल उन्हीं व्यक्तियों को अपने मित्र के रूप में चुनना चाहिये जो तुमसे अधिक बुद्धिमान् हों, जिनकी संगति तुम्हें ऊंचा उठाये, अपने पर विजय पाने, प्रगति करने, अधिक अच्छा करने और स्पष्टतर रूप से देखने में सहायता करे। और अन्त में, सबसे अच्छा मित्र जो तुम्हें मिल सकता है, क्या वे भगवान् ही नहीं हैं जिनको तुम सब कुछ कह सकते हो, खोल कर रख सकते हो? क्योंकि निश्चय ही, सर्वकरुणा, सर्वशक्ति का स्रोत वहीं है, वे प्रत्येक भूल को, यदि उसे दोहराया न जाये तो, मिटा सकते हैं, सच्ची चरितार्थता का मार्ग खोल सकते हैं। वे ही हैं जो सब कुछ समझ सकते हैं, सब घावों को भर सकते हैं तथा पथ पर सदा सहायता कर सकते हैं; तुम हिम्मत न हार जाओ, लड़खड़ा न पड़ो, गिर न जाओ, बल्कि लक्ष्य की ओर सीधे चलते चलो इसमें तुम्हारी सहायता कर सकते हैं। वे ही सच्चे मित्र हैं, अच्छे और बुरे दिनों के साथी हैं। वे समझ सकते हैं, घावों को भर सकते हैं

और जब तुम्हें उनकी जरूरत होती है वे सदा उपस्थित हो जाते हैं। जब तुम उन्हें सच्चाई से पुकारते हो तो वे सदा पथ-प्रदर्शन करने और सहारा देने और तुमसे सच्चे रूप में प्रेम करने के लिए आ उपस्थित होते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ६३-६४

उचित मनोवृत्ति की शक्ति

यदि जो होने वाला है उसकी परिस्थिति में तुम अपने लिए अधिक-से-अधिक सम्भव ऊंची मनोवृत्ति अपना सको—अर्थात्, यदि तुम अपनी चेतना को अपनी पहुंच की उच्चतम चेतना के सम्पर्क में ला सको तो तुम पूरी तरह निश्चित हो सकते हो कि उस स्थिति में तुम्हारे लिए जो हो सकता है वह सर्वोत्तम होगा। लेकिन जैसे ही तुम उस चेतना से निचले स्तर पर गिर पड़ो वैसे ही जो होगा वह स्पष्टतः अच्छे-से-अच्छा न होगा और कारण स्पष्ट है—तुम अपनी अच्छी-से-अच्छी चेतना में नहीं हो...। मैं निश्चयपूर्वक यहां तक कह सकती हूं कि हर एक के तात्कालिक प्रभाव के क्षेत्र में उचित मनोवृत्ति में इतनी शक्ति होती है कि वह हर परिस्थिति को लाभदायक बना सके, इतना ही नहीं, वह स्वयं परिस्थिति को बदल तक सकती है। उदाहरण के लिए, अगर कोई तुम्हें मारने आये, उस समय तुम यदि साधारण चेतना में रहो और डर कर होश-हवास खो बैठो तो सम्भवतः वह जो कुछ करने के लिए आया है उसमें सफल हो जायेगा; अगर तुम जरा ऊपर उठ सको और डर से भरे होते हुए भी भागवत सहायता को बुलाओ तो वह जरा-सा चूक जायेगा या तुम्हें जरा-सी चोट ही पहुंचा पायेगा; लेकिन अगर तुम्हारे अन्दर उचित मनोवृत्ति हो और तुम्हारे चारों ओर हर जगह भागवत उपस्थिति की पूरी चेतना हो तो वह तुम्हारे विरुद्ध उंगली भी न उठा सकेगा। यह सत्य रूपान्तर की सारी समस्या की ठीक चाबी है। हमेशा भागवत उपस्थिति के साथ सम्बन्ध बनाये रखो, उसे नीचे उतारने की कोशिश करो—तो हमेशा अच्छे-से-अच्छी चीज ही होगी। पर हां, सारा जगत् एकदम नहीं बदल जायेगा, लेकिन वह जितनी तेजी कर सकता है उतनी तेजी से आगे बढ़ेगा।...

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. १६६-६७

प्रगति सृष्टि में भागवत प्रभाव का चिह्न है—श्रीमां

सुरक्षा के आध्यात्मिक तथा गुह्य उपाय

विशेष सुरक्षा के अन्दर ही रहो

तुम भली-भांति समझते हो, है न, कि "संरक्षण के अन्दर" होने का क्या मतलब है? "संरक्षण के बाहर चले जाने" का अर्थ भी तुम जानते हो? यदि तुम कोई उलटी चीज करो, उदाहरण के लिए, अगर तुम भगवान् के संरक्षण में हो और एक क्षण के लिए तुम्हारे अन्दर सन्देह या दुर्भावना या विद्रोह का विचार आये तो तुम तुरन्त संरक्षण के बाहर चले जाते हो। संरक्षण तुम्हारे चारों ओर कार्य करता है ताकि विरोधी शक्तियां न आने पायें, कोई दुर्घटना न होने पाये, यानी, अगर तुम चेतना खो भी दो तो संरक्षण के कारण चेतना का अभाव तुरन्त बुरे परिणाम न लायेगा। लेकिन अगर तुम संरक्षण के बाहर चले जाओ और सारे समय जागरूक न रहो तो तुम पर विरोधी शक्तियों का आक्रमण होगा या कोई दुर्घटना हो जायेगी।

लेकिन जो सचेतन नहीं हैं?

जो सचेतन नहीं हैं? वहां भी, मैंने बताया है न, कि मैं साधारण लोगों की बात नहीं कर रही थी। मैं साधारण लोगों की बात नहीं कर रही, वे विशेष संरक्षण में नहीं होते। साधारण लोग साधारण स्थितियों में होते हैं। उन पर नजर रखने वाला विशेष संरक्षण नहीं होता। मैं यह बात उनके लिए नहीं कह रही। वे जीवन के सभी सामान्य नियमों के अनुसार चलते हैं। तुम ये बातें उन्हें इसी तरह से नहीं समझा सकते...। तुम सब लोगों की बात सोच रहे थे, कि यह चीज सब लोगों के लिए है? यह बात सिर्फ उनके लिए है जो योग करते हैं, यह सबके लिए नहीं है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १८३-८४

दूर से सहायता करना

मैं पहले भी कई बार तुम्हें बता चुकी हूं कि यदि कोई स्पष्ट रूप में और सशक्त रूप से सोचे तो वह एक मानसिक रचना का निर्माण करता है, और प्रत्येक मानसिक रचना अपने निर्माता से स्वतन्त्र एक सत्ता होती है, जिसका अपना निजी जीवन होता है और जो मानसिक जगत् में अपनी

संसिद्धि प्राप्त करने की प्रवृत्ति रखती है—मेरा मतलब यह नहीं है कि तुम अपनी रचना को अपनी भौतिक आंखों से देखते हो, पर वह मानसिक जगत् में विद्यमान होती है, उसका अपना निजी, विशिष्ट स्वतन्त्र अस्तित्व होता है—यदि तुमने किसी निश्चित उद्देश्य से कोई रचना बनायी है तो वह सारे जीवन ही इस उद्देश्य की सिद्धि में लगी रहेगी। अतः, यदि तुम किसी की दूर से सहायता करना चाहते हो तो तुम जिस प्रकार की सहायता देना चाहते हो और जो परिणाम पाना चाहते हो, बस उसकी रचना बहुत स्पष्ट, बहुत यथार्थ और प्रबल रूप में तुम्हें करनी होगी। उसका अपना प्रभाव उत्पन्न होगा ही। मैं यह नहीं कह सकती कि वह रचना सर्वशक्तिमान् होगी, कारण, मानसिक जगत् इस प्रकार की अनगिनत रचनाओं से भरा होता है और स्वभावतः ही वे एक-दूसरे के साथ टक्कर खाती और विरोध करती हैं; अतः सबसे अधिक बलशाली और अत्यन्त हठी रचनाएं ही सबसे अधिक लाभ उठायेंगी।

अब, वह वस्तु कौन-सी है जो मानसिक रचनाओं को बल और स्थायित्व प्रदान करती है?—वह है भावावेग और संकल्प। यदि तुम्हें यह पता हो कि अपनी मानसिक रचना के साथ किस प्रकार किसी भावावेग, अनुराग, करुणा, प्रेम को, और किसी तीव्र संकल्प, किसी क्रिया-शक्ति को जोड़ा जाता है तो उसे सफलता पाने का कहीं अधिक अवसर प्राप्त होगा। यही है पहली प्रक्रिया। यह उन सभी लोगों की पहुंच के अन्दर है जो यह जानते हैं कि कैसे सोचा जाता है, और उन लोगों की पहुंच के अन्दर तो और भी अधिक है जो यह जानते हैं कि कैसे प्रेम किया जाता है। पर, जैसा कि मैं कह चुकी हूं, शक्ति सीमित है और उस जगत् में बहुत बड़ी प्रतिद्वन्द्विता है।

अतएव, यदि किसी में बिलकुल ही कोई ज्ञान न हो पर भागवत 'कृपा' पर भरोसा हो, यदि उसमें यह श्रद्धा हो कि इस जगत् में भागवत 'कृपा' जैसी कोई वस्तु है, और यह कोई वस्तु किसी प्रार्थना, किसी अभीप्सा, किसी पुकार का उत्तर दे सकती है, तो अपनी मानसिक रचना बनाने के बाद, यदि कोई इसे 'कृपा' को अर्पित कर दे और उस शक्ति में अपना विश्वास रखे, उससे हस्तक्षेप करने की याचना करे और यह विश्वास बनाये रखे कि वह हस्तक्षेप करेगी, तो निस्सन्देह उसे सफलता पाने का अवसर मिलेगा।

कोशिश करो, और तुम निश्चित ही इसका परिणाम देखोगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३०६-०७

अजेय स्थिति प्राप्त करो

एक विकृत और भ्रष्ट गुह्य ज्ञान है जिसे लोग काला जादू कहते हैं। यह ऐसी चीज है जिसे तुम्हें कभी न छूना चाहिये। लेकिन दुर्भाग्यवश, ऐसे लोग हैं जो इसे कुटिलतावश हस्तगत करते हैं। यह न सोचो कि यह एक भ्रम है, एक अन्धविश्वास है : यह एक सच्ची चीज है। ऐसे लोग हैं जिन्हें जादू करना आता है और वे करते हैं, और वे अपने जादू के द्वारा बिलकुल घृणित परिणाम लाते हैं...। यह जानी हुई बात है कि जब तुम्हारे अन्दर भय न हो, यदि तुम संरक्षण में रहो तो तुम सुरक्षित रहते हो। लेकिन प्रश्न "जब" का है, यह एक शर्त है और अगर तुम इसे हमेशा पूरा न करो तो बहुत अप्रिय चीजें घट सकती हैं। जब तुम शक्ति से भरपूर और पूर्ण पवित्रता की स्थिति में होते हो—यानी, अजेय स्थिति में होते हो—उस समय अगर कोई तुम्हारे विरुद्ध कुछ करे तो वह अनायास ही उसी के ऊपर जा गिरेगी, जैसे जब तुम टेनिस की गेंद दीवार से मारो तो वह तुम्हारे पास वापिस आती है। यह चीज ठीक उसी तरह वापिस आती है, कभी-कभी ज्यादा जोर के साथ, और उन्हें अपनी कुटिलता का दण्ड मिल जाता है। लेकिन स्वाभाविक है कि यह उस पर निर्भर करता है जिसके विरुद्ध जादू किया गया है, उसकी शक्ति और आन्तरिक पवित्रता पर...। मैंने इस प्रकार के बहुत-से उदाहरण देखे हैं। और इनका प्रतिरोध करने के लिए, जैसा कि मैंने कहा, तुम्हें प्राणलोक का सैनिक होना चाहिये, यानी, प्राण में आध्यात्मिक सैनिक होना चाहिये। उन सबको जो निष्कपट-भाव से योग करते हैं, वैसा बन जाना चाहिये और वे वैसा बन जाते हैं तो पूरी तरह सुरक्षित रहते हैं। लेकिन ऐसा बनने की शर्तों में से एक है—औरों के प्रति कभी कोई दुर्भावना या बुरा विचार न होना। क्योंकि यदि तुम्हारे अन्दर कोई बुरा भाव या दुर्भावना या बुरा विचार हो तो तुम अपने-आपको उन्हीं के धरातल पर उतार लाते हो और जब अपने-आपको उन्हीं के धरातल पर उतार लाओ तो, तुम उनके प्रहार भी पा सकते हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. १९८-९९

पत्थर अपने अन्दर शक्ति लिये रहते हैं

पत्थर अनिश्चित काल तक शक्तियों को सञ्चित रख सकता है।

ऐसे पत्थर हैं जो सम्पर्क की कड़ी का काम दे सकते हैं, ऐसे पत्थर हैं जो बैटरी का काम दे सकते हैं। ऐसे पत्थर हैं जो किसी शक्ति को संरक्षण के लिए रख सकते हैं। मेरे बच्चे, वह सचमुच विलक्षण है। तुम पत्थर में (विशेषकर एमेथिस्ट या जम्बुमणि में) संरक्षण की शक्ति को सञ्चित कर सकते हो और वह शक्ति सचमुच पहनने वाले की रक्षा करती है। यह बहुत मजेदार है। मैंने इसका अनुभव किया है। मेरा एक आदमी से परिचय था जिसके पास ऐसा पत्थर था जो संरक्षण की शक्ति से भरा था, और जब वह उसे पहनता था तो वह अद्‌भुत...। ऐसे पत्थर होते हैं जो घटनाओं की पूर्व-सूचना देने के उपयोग में आ सकते हैं। कुछ लोग इन पत्थरों में आने वाली घटनाओं को पढ़ सकते हैं। पत्थर सन्देश वहन कर सकते हैं। स्वभावतः, इसके लिए दोनों ओर योग्यता होनी चाहिये—एक ओर एकाग्रता की काफी प्रबल शक्ति और दूसरी ओर बहुत अधिक यथार्थ शब्दों का उपयोग किये बिना भी सीधा देख और पढ़ सकने की क्षमता। फलतः, चूंकि वे बैटरी का काम दे सकते हैं अतः इसका मतलब यह हुआ कि वे अपने अन्दर स्वयं शक्ति का स्रोत लिये रहते हैं, अन्यथा वे ग्रहणशील न होते। इस प्रकार की शक्ति ही स्फटिकीकरण के मूल में होती है, उदाहरण के लिए, शैल-स्फटिक ले लो जिनमें ऐसे सुन्दर और पूर्ण सामञ्जस्ययुक्त नमूने होते हैं। यह केवल एक ही चीज से आ सकती है और वह है केन्द्र में 'उपस्थिति'। हां, तुम इसे नहीं देखते क्योंकि तुम्हारे अन्दर आन्तरिक संवेदन-शक्ति नहीं है। लेकिन एक बार तुम्हारे अन्दर चीजों के पीछे रहने वाले प्रेम की शक्तियों को सीधा अनुभव करने की क्षमता आ जाये तो तुम देखोगे कि वे शक्तियां सब जगह समान हैं। निर्मित वस्तुओं में भी : तुम यह समझ सकते हो कि वे क्या कहती हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. २५४-५५

मृत्यु के बाद मार्ग में सुरक्षा

सामान्यतया, "मृत्यु का क्षेत्र" नाम अत्यधिक स्थूल प्राणिक जगत् के एक क्षेत्र को दिया जाता है, उस जगत् को जिसमें व्यक्ति शरीर छोड़ने के

बाद प्रवेश करता है। उसके जीवन का वह भाग—इसे कैसे कहा जाये? —जो कि साधारणतया सबसे अधिक सचेतन होता है, मृत्यु के समय उस क्षेत्र में प्रक्षिप्त किया जाता है। हां, तो वह क्षेत्र, वह स्थूल प्राणिक जगत् बड़ा अन्धकारमय होता है, वह उन विरोधी रचनाओं से भरपूर होता है जिनके केन्द्र में कामनाएं, बल्कि विरोधी संकल्प-शक्तियां भी रहती हैं; ये बहुत, बहुत ही प्रारम्भिक सत्ताएं होती हैं जिनका जीवन बड़ा ही खण्डित होता है, बल्कि वे खून चूसने वाले भूत-प्रेत जैसे होते हैं जो मानवीय सत्ताओं में से फेंके गये टुकड़ों पर निर्वाह करते हैं। अतएव, उस समय, मृत्यु के आघात के समय—ऐसे बहुत कम लोग हैं जो बिना आघात पाये मर जाते हैं, अर्थात्, मृत्यु-सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान के साथ, सचेतन रूप में शरीर से बाहर जाते हैं, ऐसे लोग अधिक नहीं हैं—सामान्यतया वह एक दुर्घटना होती है : अन्तिम दुर्घटना; हां तो, मृत्यु के उस आघात के समय वे सत्ताएं वहां, उस प्राणिक सत्ता पर, जो बाहर चली जाती है, लपक पड़ती हैं और उसे अपना आहार बना लेती हैं। जब तक व्यक्ति जीवित रहता है, वे उसका स्पर्श नहीं कर सकतीं। तुम सबको ऐसे दुःस्वप्न का अनुभव होगा जिसमें स्थिति के सचमुच संकटपूर्ण होने पर तुम अचानक जाग उठते हो—तुम अपने शरीर में लौट आते हो, क्योंकि शरीर तुम्हारा सुरक्षा-कवच है। शरीर में वे तुम्हारा कुछ नहीं बिगाड़ सकतीं किन्तु जब तुम शरीर से पूर्णतया बाहर होते हो (यह कड़ी, जिसके बारे में मैंने तुम्हें बताया था, तुम्हारे शरीर से बाहर चले जाने पर तुम्हारी कुछ हद तक रक्षा करती है), यदि ये कड़ियां टूट जायें और तुम सर्वथा बिना शरीर के हो जाओ, तो ऐसा ही होगा, जब तक कि तुम किन्हीं विशेष परिस्थितियों से फायदा न उठा सको... उदाहरणार्थ, यदि मृत व्यक्ति पर उसके प्रिय सम्बन्धी जो उसे बहुत प्यार करते हैं, अपने प्रेमपूर्ण विचार केन्द्रित और एकाग्र करें, तो उसे वहां आश्रय मिल जाता है, और फिर यह बात उसे उन सत्ताओं के विरुद्ध पूर्ण सुरक्षा प्रदान करती है; किन्तु यदि मृत व्यक्ति का ऐसा सम्बन्धी न हो जिसे उसके लिए विशेष मोह हो, और वह उस समय उन व्यक्तियों से घिरा हो जिन्हें उसने नुकसान पहुंचाया है और जो उसे प्यार नहीं करते अथवा जो बहुत अधिक अचेतन हों—तो वह ऐसी शक्तियों का शिकारमात्र रह जाता है।...

यह तो एक सामान्य नियम है। पर वहां कई सेतु, "सुरक्षित मार्ग" भी होते हैं जिनका निर्माण प्राणिक जगत् में इसलिए हुआ है कि इन पर से होकर व्यक्ति इन सब संकटों से पार हो सके। कुछ ऐसे वातावरण होते हैं जो उन लोगों को, जो अपना शरीर छोड़ रहे होते हैं, आश्रय और संरक्षण देते हैं। वहां सभी प्रकार की अवस्थाएं होती हैं; जो मैंने तुम्हें अभी बतायी है वह मृत व्यक्ति की, सर्वसाधारण मनुष्य की सामान्य अवस्था है, किन्तु यदि हम जरा अधिक उच्च प्रकार की मानवता को लें, तो ये सब अवस्थाएं बदल जाती हैं। सामान्य नियम तब तक बना रहता है जब तक कि सत्ता के अन्दर एक विशेष प्रकार का उच्चतर विकास साधित न हो जाये। कई लोगों की सत्ता में संघटन इतना पूर्ण होता है कि वे अपने शरीर पर निर्भर नहीं करते—बिलकुल नहीं—चाहे वह हो या न हो।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ६, पृ. ६३-६५

मृत व्यक्ति को सुरक्षा प्रदान करना

इस दृष्टिकोण से यह कहा जा सकता है कि यदि तुम्हारा किसी मृत व्यक्ति के साथ, जो शरीर छोड़ चुका है, प्रगाढ़ और सच्चे प्यार का सम्बन्ध था और यदि तुम स्वयं काफी स्थिर और दृढ़ हो तो वह व्यक्ति कम या ज्यादा लम्बे समय के लिए, अपने प्राण के लिए तुम्हारे वायुमण्डल में—अपने प्रियजन के वायुमण्डल में—आश्रय ले सकता है। इस हालत में इसका अर्थ होगा कि सम्बन्ध बहुत निकट का था, बहुत अन्तरंग था, और यदि तुम इतने जड़वादी नहीं हो कि कोई सीधा मानसिक बोध ही न हो तो तुम इस व्यक्ति के साथ मानसिक रूप में सम्बन्ध बनाये रख सकते हो; उससे आदान-प्रदान कर सकते हो। ऐसा बहुत विरल होता है, क्योंकि आम तौर पर यदि तुम्हारा वायुमण्डल काफी स्थिर और दृढ़ है और सचमुच सुरक्षा प्रदान कर सकता है तो वह व्यक्ति जो शरीर छोड़ चुका है, वहां गहन विश्रान्ति में चला जाता है और उसे परेशान करना बिलकुल अनुचित है; सबसे अच्छा तो यह होगा कि तुम उस व्यक्ति को अपने प्यार में लपेट लो और शान्ति से रहने दो।

संरक्षक वातावरण

इसका मतलब है कि ज्यों ही मनुष्य 'सत्य' के निकट पहुंचता है वह

नीमहकीमी से, सारे पाखण्डों और मिथ्यात्व से त्राण पा जाता है। मेरे पास इसके बहुत-से और बहुत ही निर्णायक प्रमाण हैं। अतः जिसके पास सच्ची गुह्यविद्या की शक्ति है उसके पास, साथ-ही-साथ, हम यूं कह सकते हैं, इस आन्तरिक सत्य के बल पर, उस सत्य के बिन्दु-भर प्रयोग द्वारा जादुओं को मिटा देने की शक्ति भी होती है, चाहे वे सफेद हों या काले हों या किसी और रंग के। कोई चीज ऐसी नहीं जो इस शक्ति का प्रतिरोध कर सके। जादू करने वालों को यह बात अच्छी तरह मालूम होती है, क्योंकि सभी देशों में, खासकर भारत में, वे सदा इस बात में बहुत सावधानी बरतते हैं कि अपने मन्त्रों का प्रयोग योगियों और सन्तों के विरुद्ध कभी न करें, क्योंकि वे जानते हैं कि थोड़ी-सी यान्त्रिक और बहुत छिछली शक्ति के साथ भेजे गये उनके ये मन्त्र आध्यात्मिक जीवन बिताने वाले की संरक्षिका सच्ची शक्ति के साथ वैसे ही टकरायेंगे जैसे दीवार के साथ गेंद टकराती है और स्वभावतः वहां से पलट कर उनका मन्त्र वापस उन्हीं पर आकर गिरेगा। योगी या सन्त को कुछ करने की जरूरत नहीं पड़ती, उसे अपने-आपको बचाने की इच्छा तक नहीं करनी पड़ती : सब कुछ अपने-आप हो जाता है। वह चेतना और आन्तरिक शक्ति की एक ऐसी अवस्था में होता है जो हर निम्नतर चीज से स्वतः उसकी रक्षा करती है। स्वाभाविक है कि दूसरों को बचाने के लिए भी वह अपनी शक्ति का स्वेच्छा से उपयोग कर सकता है। उसके वातावरण से बुरी रचना का इस तरह पलटना, अपने-आप उसकी रक्षा करता है, लेकिन यदि यह बुरी रचना किसी ऐसे के विरुद्ध भेजी गयी है जो उसके संरक्षण में है या जिसने उसकी सहायता मांगी है तब वह अपने वायुमण्डल के, अपने प्रभामण्डल के प्रसार से उस व्यक्ति को घेर सकता है जो जादूभरे दुष्ट टोनों के प्रति खुला हुआ है, और पलटने की प्रक्रिया उसी तरह होती है और काम करती है जिससे वह बुरी रचना स्वाभाविक ढंग से भेजने वाले के ऊपर जा गिरे। लेकिन ऐसी दशा में योगी या सन्त-महात्मा के सचेतन संकल्प की आवश्यकता होती है। जो कुछ हुआ हो उसकी सूचना उसे अवश्य दी जानी चाहिये और उसे हस्तक्षेप करने का निर्णय करना चाहिये।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ३९३-९४,४२७-२८

आन्तरिक अनुभूति

किन्तु मुझे कई बार ऐसे अनुभव हुए हैं। उदाहरणार्थ, मैं एक बार पर्वतीय प्रदेश में घूम रही थी, मैं एक ऐसे रास्ते पर चल रही थी जहां केवल एक ही आदमी के चलने-लायक स्थान था—एक ओर ऊंचा पहाड़ तो दूसरी ओर एक सीधी चट्टान। मेरे पीछे तीन बच्चे थे और उनके पीछे एक अन्य व्यक्ति था। मैं सबसे आगे थी। मार्ग चट्टानों में से होकर जा रहा था और वह किधर जा रहा है यह देखना सम्भव नहीं था—साथ ही वह बड़ा संकटपूर्ण भी था, यदि पैर फिसल जाये, तो आदमी सीधा खन्दक में जा गिरे। मैं सबके आगे थी, अचानक ही मैंने देखा, इन आंखों से नहीं, दूसरी आंखों से—यद्यपि मैं बड़े ध्यान से अपने पैरों की ओर देख रही थी—मैंने वहां, चट्टान के दूसरे सिरे पर एक सांप देखा।

मैंने धीरे-से एक पग आगे बढ़ाया और सचमुच ही दूसरी ओर एक सांप था। इससे मैं आश्चर्य के पहले धक्के से बच गयी क्योंकि मैंने उसे पहले से ही देख लिया था और मैं सावधानी से आगे बढ़ी थी। और क्योंकि मुझे यह धक्का नहीं लगा, मैं बच्चों को भी बिना आघात पहुंचाये यह बता सकी : "ठहरो, चुप रहो, हिलो मत।" यदि यह आघात लगता तो कुछ भी हो सकता था। सांप ने शोर सुन लिया था। वह कुण्डली मार कर अपने बिल के आगे अपने बचाव के लिए तैयार बैठा था, उसका सिर झूम रहा था—वह एक बड़ा विषैला सांप था।

यह घटना फ़्रांस में घटी थी। उस दिन कुछ नहीं हुआ। पर यदि कुछ गड़बड़ या हो-हल्ला होता तो पता नहीं क्या कुछ हो जाता। इस प्रकार की बातें मेरे साथ बहुत, बहुत बार हो चुकी हैं...

ऐसी सैकड़ों बातें मेरे साथ हो चुकी हैं, ठीक एक सेकेंड पहले, उससे जल्दी नहीं, मुझे सूचना मिल जाती थी, और बहुत भिन्न परिस्थितियों में।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. १५२-५३

सुरक्षा का प्रभामण्डल

एक बार पैरिस में मैं 'सैं मिशैल बुलवार' (Boulevard) को पार कर रही थी। यह अन्तिम सप्ताहों की बात थी; मैंने यह निर्णय लिया था कि इतने महीनों में मुझे अन्तरात्म-सत्ता के साथ, आन्तरिक भागवत सत्ता

के साथ संयुक्त हो जाना है और मैं केवल उसी की बात सोच रही थी, मेरा इसके अतिरिक्त और किसी चीज से कोई सरोकार न था। मैं उस समय लुक्समबुर्ग के पास रहती थी और शाम को रोज लुक्समबुर्ग बगीचे में घूमने के लिए जाती थी, पर मैं सदा अन्तर्मुख ही रहती थी। वहां एक चौराहा-सा था और अन्तर्मुख रहते हुए पार करने के उपयुक्त वह स्थान नहीं था, यह बहुत बुद्धिसंगत भी नहीं था। इस प्रकार एक दिन जब मैं उसी अवस्था में चल रही थी, अचानक मुझे एक धक्का-सा लगा, मानों किसी ने मेरे ऊपर चोट की हो। मैं सहज प्रेरणावश पीछे की ओर कूदी और ज्यों ही मैं पीछे कूदी एक ट्राम-कार वहां से निकल गयी—इस ट्राम-कार की उपस्थिति को मैंने एक हाथ की दूरी से अनुभव कर लिया था। इसने मेरे घेरे को, मेरे सुरक्षा के घेरे को छू लिया था—वह उस समय बहुत सशक्त था, मैं पूरी तरह गुह्यविद्या में डूबी हुई थी और मैं उसे रखना जानती थी—सुरक्षा के इस ज्योतिमण्डल को उसका आघात प्राप्त हो गया था और उसने सचमुच मुझे पीछे की ओर फेंक दिया, मानों मुझे कोई भौतिक आघात लगा हो।... यह आवश्यक भी है, यह तुम्हारी योग्यताओं को बढ़ाता है। यही बात उस समय मुझे एक व्यक्ति ने कही थी जो मुझे गुह्यविद्या सिखाता था : "तुम अपनी इन्द्रियों से, जो *अति सामान्य जीवन तक के लिए भी* बड़ी उपयोगी वस्तुएं हैं, काम नहीं लेतीं।" यह सच है, बिलकुल सच है। जितना कि हम सामान्यतया जानते हैं उससे अनन्तगुना अधिक हम अपने इन्द्रियज्ञान का उपयोग करके जान सकते हैं, केवल मानसिक दृष्टिकोण से नहीं, प्राणिक और भौतिक दृष्टिकोण से भी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १०, पृ. १५३-५४

अपने चारों ओर संरक्षण की दीवार खड़ी कर दो

इसके अतिरिक्त, अगर तुम बहुत अधिक शान्त स्पन्दनों को प्राप्त करना जानते हो, इतने शान्त कि वे तुम्हारे चारों ओर एक दीवार-सी खड़ी कर दें, तो यह हमेशा सुरक्षा के वातावरण द्वारा अपने-आपको अलग कर लेने का एक तरीका होता है। लेकिन तुम सारे समय, सारे समय, बाहर से आने वाले स्पन्दनों के उत्तर में स्पन्दित होते रहते हो। अगर तुम्हें इसका भान हो, तो सारे समय कोई चीज यूं करती रहती है *(संकेत)* इस तरह,

इस तरह, इस तरह *(संकेत)*, जो बाहर से आने वाले सभी स्पन्दनों का उत्तर देती है। तुम कभी पूरी तरह उस बिलकुल शान्त वातावरण में नहीं रहते जो तुम्हारे अन्दर से निकलता है, यानी, जो अन्दर से बाहर की ओर आता है (कोई ऐसी चीज नहीं जो बाहर से अन्दर की ओर आती हो), वह तुम्हारे चारों ओर लिफाफे के जैसी चीज है, बहुत शान्त, इस तरह —और तुम चाहे जहां चले जाओ और ये स्पन्दन जो बाहर से आते हैं तुम्हारे वातावरण के चारों ओर इस तरह *(संकेत)* करना नहीं शुरू करते।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. १६२

सोने से पहले की गयी प्रार्थना

बहरहाल, एक ऐसी चीज है जिसे तुम पूर्ण सुरक्षा के साथ कर सकते हो; सोने से पहले एकाग्र होओ, भौतिक सत्ता के सारे तनाव को शिथिल कर दो, कोशिश करो... यानी, शरीर में कोशिश करो कि तुम्हारा शरीर बिस्तर पर पड़े हुए एक नरम लत्ते की तरह हो, उसमें कहीं कोई अकड़, ऐंठन या झटका न रहे; उसे बिलकुल शिथिल कर दो मानों वह एक लत्ते के जैसी चीज हो। और फिर, प्राण: उसे शान्त करो, जितना कर सको उतना शान्त करो, अचञ्चल करो, जितना सम्भव हो उतना शान्त करो। और फिर, मन भी—उसे निष्क्रिय रखने की कोशिश करो। तुम्हें अपने मस्तिष्क पर महान् शान्ति की, महान् स्थिरता की, और सम्भव हो तो निश्चल-नीरवता की शक्ति डालनी चाहिये। विचारों का सक्रिय रूप से अनुसरण नहीं करना चाहिये, कोई प्रयास नहीं करना चाहिये, कुछ नहीं, कुछ नहीं; वहां भी हर गति को ढीला कर दो, लेकिन शिथिल करो एक प्रकार की निश्चल-नीरवता में और यथासम्भव अधिक-से-अधिक शान्त स्थिरता में।

एक बार इतना कर चुको, तो फिर, तुम अपने स्वभाव के अनुसार चेतना और शान्ति के लिए एक प्रार्थना या अभीप्सा जोड़ सकते हो, और यह भी चाह सकते हो कि पूरी नींद के दौरान समस्त विरोधी शक्तियों से तुम्हारी रक्षा हो, शान्त अभीप्सा और संरक्षण में रहो; भागवत 'कृपा' से प्रार्थना करो कि वह तुम्हारी नींद पर नजर रखे; और फिर, सो जाओ। इस तरह से सोना यथासम्भव उत्तम अवस्था में सोना होता है। इसके बाद

जो कुछ घटे, वह तुम्हारे आन्तरिक आवेगों पर निर्भर करता है, लेकिन अगर तुम इसे आग्रह के साथ रात-पर-रात, रात-पर-रात करते जाओ, तो कुछ समय बाद इसका प्रभाव होगा।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. ७२-७३

निष्कपटता रक्षा करती है

"आध्यात्मिक जीवन की तैयारी करने के लिए किस प्रारम्भिक गुण का विकास करना चाहिये?"

इसे मैंने बहुत बार बतलाया है, परन्तु यह उसे दोहराने का एक सुअवसर है : वह है सच्चाई।

एक ऐसी सच्चाई जो पूर्ण और निरपेक्ष बन जानी चाहिये, क्योंकि आध्यात्मिक पथ में **एकमात्र** सच्चाई ही तुम्हारी संरक्षिका है। यदि तुम सच्चे-निष्कपट नहीं हो तो निश्चित रूप से अगले ही पग पर गिर कर अपना सिर फोड़ लोगे। सभी प्रकार की शक्तियां, संकल्प, प्रभाव, सत्ताएं उपस्थित रहती और इस ताक में रहती हैं कि उस सच्चाई के अन्दर अत्यन्त छोटी-सी भी दरार हो जाये, और वे तुरन्त उस छिद्र के रास्ते भीतर घुस आती हैं तथा तुम्हें अस्तव्यस्त अवस्था में फेंकना शुरू कर देती हैं।

इसलिए कोई भी चीज करने, कोई भी चीज आरम्भ करने, कोई भी चीज करने की कोशिश करने से पहले, **सबसे पहले** इस विषय में निस्सन्दिग्ध हो जाओ कि तुम केवल उतने ही सच्चे नहीं हो जितने कि तुम हो सकते हो, बल्कि उससे भी अधिक बनने की इच्छा रखते हो।

क्योंकि एकमात्र वही तुम्हारा संरक्षण है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ३००

सत्य रक्षा करता है

मैंने एक संन्यासी का बड़ा विस्मयकारी उदाहरण देखा था जो किसी व्यक्ति पर इसलिए क्रुद्ध हो गया था कि वह उसका शिष्य नहीं होना चाहता था—यह पहले ही इस बात को सिद्ध करता था कि वह संन्यासी उस स्थिति को उपलब्ध करने से बहुत दूर था—और उसने उसका बदला लेना

चाहा। और निस्सन्देह, उसे कुछ शक्तियां प्राप्त थीं, उसने उस व्यक्ति को मार डालने के लिए, जिसने उसका शिष्य बनना अस्वीकार कर दिया था, एक बहुत शक्तिशाली संरचना बनायी। संयोगवश वह व्यक्ति श्रीअरविन्द के सम्पर्क में था। उसने उन्हें अपनी कहानी सुनायी और श्रीअरविन्द ने मुझे सुनायी। और परिणाम यह हुआ कि उस व्यक्ति की संरचना, जो तथाकथित भागवत 'इच्छा' से कार्य कर रहा था, इस ढंग से वापस उसी पर जा पड़ी कि स्वयं वही मर गया! और यह केवल उसी सत्य को पुनः स्थापित करने का एक तथ्य था। उसमें और कुछ करने को नहीं था।

अतएव, इस कहानी की शिक्षा यह है कि मनुष्य को दिखावा नहीं करना चाहिये, उसे होना चाहिये; मनुष्य को पूर्ण सच्चा होना चाहिये और अपनी कामनाओं को सुन्दर सिद्धान्तों के द्वारा ढकना नहीं चाहिये।...

मधुर मां, क्या ऐसे लोगों में शक्तियां होती हैं?

हां! कुछ तो ऐसे होते हैं जिन्हें महान् शक्तियां प्राप्त होती हैं। परन्तु ये वे शक्तियां होती हैं जो प्राण-जगत् से और प्राणिक सत्ताओं के साथ सम्पर्क होने पर आती हैं।

बहुत तरह की शक्तियां होती हैं। केवल, वे शक्तियां सच्ची भागवत 'शक्ति' के सम्मुख नहीं ठहर पातीं—वे उसे सहन नहीं कर सकतीं। परन्तु सामान्य मानव प्राणियों के ऊपर उनका पूरा जोर चलता है।

तब, क्या वे लोग हानि पहुंचा सकते हैं?

बहुत। केवल पहुंचा ही नहीं सकते, पहुंचाते हैं। बहुत अधिक हानि पहुंचाते हैं। जो लोग इस कारण यातना भोगते हैं कि उन्हें किसी तथाकथित **संन्यासी** से परिचित होने का दुर्भाग्य प्राप्त हुआ था, उनकी संख्या प्रचुर है, प्रचुर। मैं तुम्हें डराने के लिए यह बात नहीं कह रही हूं, क्योंकि तुम यहां सुरक्षित हो, बल्कि इसलिए कि यह एक तथ्य है। दीक्षा प्राप्त करते समय ये लोग प्राण-जगत् की किसी शक्ति का उन पर थोपा हुआ प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं जो सबसे अधिक खतरनाक है...। सर्वदा ऐसी बात नहीं होती, परन्तु अधिकतर ऐसा ही होता है।

कारण, इस जगत् में सच्चाई इतना दुर्लभ गुण है कि यदि कोई इसे देखे तो उसे इसके सामने आदर के साथ सिर झुका देना चाहिये। "सच्चाई", जिसे हम सच्चाई कहते हैं, अर्थात्, पूर्ण ईमानदारी और पारदर्शकता : अर्थात् कहीं कोई चीज ऐसी नहीं होनी चाहिये जो झूठा दावा करती हो, अपने को छिपाती हो अथवा जो कुछ वह नहीं है वैसी स्वीकृत होना चाहती हो।

बाद में ***संन्यासी*** *पर माताजी ने यह टिप्पणी जोड़ी : "निस्सन्देह, यहां केवल उन्हीं लोगों की ओर संकेत है जो एकमात्र इस उद्देश्य से काषाय वस्त्र धारण करते हैं कि वे सार्वजनिक रूप से सम्मानित इस वेश के परदे के पीछे अपनी अहंजन्य लालसाओं को छिपाये रखें। उन लोगों का कोई प्रश्न नहीं जिनका हृदय शुद्ध है और जिनका बाना आध्यात्मिक जीवन के प्रति उनके सर्वांगीण आत्मदान का मात्र बाहरी चिह्न है।"*

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. ८७-८९

तुम्हारी श्रद्धा, निष्ठा और समर्पण जितने अधिक पूर्ण होंगे, भगवती मां की कृपा और रक्षा भी उतनी ही अधिक रहेगी। और जब भगवती मां की कृपा और अभय-हस्त तुम पर है तो फिर कौन-सी चीज है जो तुम्हें स्पर्श कर सके या जिसका तुम्हें भय हो? कृपा का छोटा-सा कण भी तुम्हें सब कठिनाइयों, बाधाओं और संकटों के पार ले जायेगा; क्योंकि यह मार्ग मां का है, इसलिए किसी भी संकट की परवाह किये बिना, किसी भी शत्रुता से प्रभावित हुए बिना—चाहे वह कितनी ही शक्तिशाली क्यों न हो, चाहे वह इस जगत् की हो या अन्य अदृश्य जगत् की—इसकी पूर्ण उपस्थिति से घिर कर तुम अपने मार्ग पर सुरक्षित होकर आगे बढ़ सकते हो। इसका कृपा-स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। क्योंकि भगवती मां की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट, अवश्यम्भावी और अनिवार्य है।

'माता' पुस्तक से, पृ. १३ *—श्रीअरविन्द*

कोई आसक्ति न हो, कोई कामना न हो, कोई आवेग न हो, कोई पसन्द न हो; पूर्ण समता हो, अचल शान्ति हो और भागवत संरक्षण में अटल श्रद्धा हो : ये सब हों तो तुम सुरक्षित हो और न हों तो तुम जोखिम में हो। और जब तक तुम सुरक्षित नहीं हो तब तक मुर्गी के उन छोटे बच्चों की तरह रहना ही ठीक है जो अपनी मां के डैनों के नीचे आश्रय लेते हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ३, पृ. ५५

भागवत सुरक्षा

अतिमानसिक सुरक्षा

क्योंकि नयी जाति के पृथ्वी पर स्थापित हो सकने और जीवित रह सकने के लिए यह जरूरी होगा कि पृथ्वी के अन्य तत्त्वों से उसकी रक्षा की जाये, और शक्ति ही सुरक्षा है—कृत्रिम, बाह्य और झूठी शक्ति नहीं, बल्कि सच्चा 'बल', जयशाली 'संकल्प'। तो यह मानना असम्भव नहीं है कि अतिमानसिक क्रिया सामञ्जस्य, ज्योति, आनन्द और सौन्दर्य की क्रिया होने से भी पहले शक्ति की एक क्रिया होगी ताकि वह सुरक्षा का काम कर सके। स्वाभाविक है कि शक्ति की इस क्रिया को सचमुच प्रभावकारी हो सकने के लिए 'ज्ञान', 'सत्य', 'प्रेम' और 'सामञ्जस्य' पर आधारित होना चाहिये; परन्तु ये चीजें भी तभी अभिव्यक्त हो सकेंगी—दृश्य रूप में, थोड़ी-थोड़ी करके अभिव्यक्त होंगी—जब, यूं कहा जा सकता है, कि आधार सर्वसमर्थ 'संकल्प' एवं 'शक्ति' की क्रिया द्वारा तैयार हो चुकेगा।

परन्तु न्यूनतम रूप में भी इनमें से किसी चीज के सम्भव हो सकने के लिए सबसे पहले **पूर्ण** सन्तुलन का एक आधार होना जरूरी है, ऐसा सन्तुलन जो अहं के पूर्ण विलोप, परम पुरुष के प्रति पूर्ण समर्पण तथा पूर्ण पवित्रता की, अर्थात् परम पुरुष के साथ स्थापित तादात्म्य की देन है। इस पूर्ण सन्तुलन के आधार के बिना अतिमानसिक शक्ति बहुत खतरनाक होती है, तुम्हें **किसी भी सूरत में** उसे खोजना या अपनी ओर खींचना नहीं चाहिये, क्योंकि उसकी अत्यल्प मात्रा भी इतनी शक्तिशाली एवं भीषण होती है कि वह पूरी सत्ता के सन्तुलन को बिगाड़ सकती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. २६९-७०

भौतिक को उच्चतर शक्ति के प्रति ग्रहणशील बनाना

मैं इस निष्कर्ष पर पहुंची हूं। मैंने देखा है, मैंने अवलोकन किया है और मैंने यह जाना है कि जिसे हम, किसी अधिक अच्छे शब्द के अभाव में, "अतिमन" कहते हैं, वह 'अतिमन' सृष्टि को उच्चतर 'शक्ति' के प्रति अधिक संवेदनशील बना देता है; हम उसे "भगवान्" कहते हैं क्योंकि हम... हम जो हैं उसकी तुलना में वह दिव्य है, लेकिन... वह कुछ ऐसी चीज है *(अवतरण और दबाव की मुद्रा)*, जिसे 'जड़-तत्त्व' को 'शक्ति' के प्रति

अधिक संवेदनशील और अधिक... "ग्रहणशील" बना देना चाहिये। कैसे कहा जाये?... अभी तो हमारे लिए जो कुछ भी अदृश्य या अगोचर है वह अवास्तविक है (मैं सामान्य मनुष्य की बात कह रही हूं)। हम कहते हैं कि कुछ चीजें "ठोस" हैं और कुछ चीजें ऐसी नहीं हैं; फिर भी यह 'बल', यह 'शक्ति', **जो भौतिक नहीं है**, धरती पर पार्थिव भौतिक वस्तुओं की अपेक्षा अधिक ठोस रूप में शक्तिशाली है। हां, बात ऐसी ही है।

अतिमानसिक सत्ताओं के लिए यही सुरक्षा और बचाव का साधन बन गयी है; यह एक ऐसी चीज होगी जो देखने में भौतिक नहीं है, लेकिन जिसका *'भौतिक द्रव्य'* पर, भौतिक चीजों की अपेक्षा अधिक प्रभुत्व है। यह दिन-पर-दिन, बल्कि घण्टे-पर-घण्टे अधिकाधिक सत्य होती जा रही है—ऐसा लगता है कि यह 'शक्ति', जब इसे उससे निर्देशन मिलता है जिसे हम "भगवान्" कहते हैं, तो यह सचमुच 'भौतिक द्रव्य' को परिचालित करने में समर्थ होती है, समझे। यह **भौतिक** संयोग पैदा कर सकती है; यह निरी भौतिक चीज के परिणामों को मिटा सकती है—यह 'भौतिक द्रव्य' से अधिक... शक्तिशाली है। यह एकदम नयी और अबोधगम्य है; और इसलिए यह मनुष्यों की साधारण चेतना में एक आतंक पैदा कर देती है। हां, यह वही है। ऐसा लगता है... यह **अब** वह नहीं है जो पहले थी। और सचमुच कुछ नयी चीज है—**अब** यह वह नहीं रही जो पहले थी।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ११, पृ. ३३५-३६

आदर्श मनोभाव

पर इस प्रकार की अनुभूति कि तुम्हारे जीवन का बस एकमात्र हेतु, एकमात्र लक्ष्य, एकमात्र अभिप्राय है भगवान् के प्रति पूरा-पूरा, सम्पूर्ण, समग्र, इस हद तक समर्पण कि तुम अपने-आपको उनसे अलग न जान सको, पूरी तरह से, सम्पूर्ण भाव से, समग्र रूप से, सर्वभावेन, किसी व्यक्तिगत प्रतिक्रिया के हस्तक्षेप के बिना, वही बन जाओ—यह आदर्श मनोभाव है; और इसके अतिरिक्त, यही एक चीज है जो तुम्हारे लिए जीवन और कार्य में आगे बढ़ना सम्भव बनाती है। तब तुम हर चीज से सुरक्षित होगे और अपने-आपसे सुरक्षित होगे—यह "अपने-आप" ही तुम्हारे लिए सबसे बड़ा संकट है—अपने-आपसे बढ़ कर और कोई संकट नहीं है (यहां "अपने-

आप" से मेरा मतलब अहंकारमय स्व से है)।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ७, पृ. २११

सभी में केवल 'भागवत उपस्थिति' को ही देखना

इस चेतना में प्रत्येक चीज को सतत आनन्द में परिवर्तित **कर देने की** सामर्थ्य होती है; क्योंकि वस्तुओं को उनके बेमेल बाह्य रूपों में देखने की जगह मनुष्य सर्वत्र केवल दिव्य 'उपस्थिति' को, दिव्य 'संकल्प-शक्ति' तथा 'भगवत्कृपा' को ही देखता है; और प्रत्येक घटना, प्रत्येक तत्त्व, प्रत्येक परिस्थिति, प्रत्येक रूप एक ऐसे तरीके में, ब्योरे में बदल जाता है जिसके द्वारा मनुष्य घनिष्ठतर और गभीरतर रूप में भगवान् के अधिक समीप पहुंच सकता है। विरोध विलीन हो जाते हैं, कुरूपताएं विनष्ट हो जाती हैं; उसके बाद रह जाता है एक ऐसे प्रेम के अन्दर दिव्य 'उपस्थिति' का एकमात्र जाज्वल्यमान रूप जो सभी वस्तुओं में चमकता रहता है।...

इस प्रकार की अनगिनत गाथाएं या कहानियां प्रचलित हैं, जैसे प्रह्लाद[१] की कहानी जिसका सिनेमा अभी हाल में हमने देखा था, ऐसी कहानियां जो चेतना की इस स्थिति को प्रकट करती हैं। और मुझे पूरा विश्वास ही नहीं, बल्कि बिलकुल ठोस अनुभव भी प्राप्त हुआ है कि यदि किसी खतरे के या शत्रु के या किसी बुरी इच्छा के सम्मुख तुम इस अवस्था में बने रह सको और सभी वस्तुओं में भगवान् को देख सको तो उस खतरे का कोई प्रभाव न होगा, बुरी इच्छा तुम्हारा कुछ भी बिगाड़ नहीं सकेगी, और शत्रु या तो

[१] हिन्दू-पुराणों के अनुसार प्रह्लाद राजा हिरण्यकशिपु का बेटा था जो कि भगवान् विष्णु का प्रचण्ड शत्रु था। राजा ने अपने राज्यभर में विष्णु की पूजा की मनाही कर दी थी, और जब उसने सुना कि उसका बेटा प्रह्लाद उसी के राजमहल में उस देवता की पूजा कर रहा है तो उसने अपने पुत्र को सांपों के सामने फेंक दिया, परन्तु सांपों ने उसे नहीं डसा। फिर उसने उसे एक पहाड़ के शिखर पर से समुद्र में फिंकवा दिया, परन्तु आश्चर्यजनक ढंग से सागर उसे वापस ले आया। क्रुद्ध राजा ने जब अपने पुत्र से पूछा कि किसने उसे बचाया तो बालक ने उत्तर दिया : "विष्णु सर्वत्र विद्यमान हैं, सांपों में और सागर में।" मजेदार बात यह है कि स्वयं राजा को किन्हीं ऋषियों के शाप के कारण विष्णु के स्वर्ग से निकाल दिया गया था और ऋषियों ने उससे यह चुनाव करने को कहा था कि तीन जन्म विष्णु का शत्रु बन कर पृथ्वी पर रहोगे या दस जन्म विष्णु का भक्त बन कर। और राजा ने छोटे पथ को ही पसन्द किया था।

परिवर्तित हो जायेगा अथवा भाग खड़ा होगा। यह बात बिलकुल निश्चित है।

परन्तु एक छोटी-सी बात मैं और जोड़ देना चाहूंगी जो बहुत महत्त्वपूर्ण है। तुम्हें इस स्थिति या चेतना को किसी स्वार्थवश पाने का प्रयास नहीं करना चाहिये या फिर इसलिए कि यह एक संरक्षण है अथवा एक सहायता है। तुम्हें इसे सच्चाई के साथ, सहज भाव से और निरन्तर बनाये रखना चाहिये; यह तुम्हारी सत्ता का एक सामान्य, स्वाभाविक, प्रयासहीन तरीका होना चाहिये। तब यह स्थिति फलदायी होगी। परन्तु तुम यदि किसी विशेष परिणाम को प्राप्त करने की भावना के साथ इस क्रिया का जरा-सा भी अनुकरण करने की कोशिश करोगे तो उसका कोई भी फल नहीं होगा। वह परिणाम बिलकुल ही नहीं प्राप्त होगा। और तब तुम अपने अज्ञान के वश शायद यह कहोगे : "ओह! परन्तु मुझसे कहा गया था, लेकिन यह तो सच नहीं है!" इसका कारण यह है कि तुम्हारे अन्दर कहीं पर कोई कपट विद्यमान था।

अन्यथा, यदि तुम वास्तव में सच्चे होओ, अर्थात्, यदि यह एक सर्वांगपूर्ण और स्वाभाविक अनुभव हो तो यह सर्वशक्तिमान् होगा। यदि किसी की आंखों में तुम ताको और वहां सहज भाव से भागवत 'उपस्थिति' को विद्यमान देखो तो बुरी-से-बुरी क्रियाएं विलीन हो जायेंगी, बुरी-से-बुरी बाधाएं दूर हो जायेंगी; और एक अनन्त हर्ष की ज्योति प्रज्वलित हो उठेगी, कभी-कभी दूसरे व्यक्ति में और अपने अन्दर भी। यदि अन्य व्यक्ति में उसकी अशुभ इच्छा के अन्दर ठीक एक नन्हीं-सी दरार होने की तनिक भी सम्भावना हो या हो जाये तो वह ज्योति चमक उठती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ८, पृ. २६८-७१

कृपा तथा कर्मों के परिणाम

किया गया हर कार्य हमेशा कुछ परिणाम लाता है और यह परिणाम कुछ और लाता है, और इसी तरह चलता रहता है। और यह बिलकुल अपरिहार्य है। यह वैश्व न्याय है। तुम्हारे अन्दर एक बुरा विचार आता है, उसका कुछ परिणाम होता है और उस परिणाम से कुछ और होता है। तुम उससे बच नहीं सकते, केवल 'कृपा' का हस्तक्षेप ही बचा सकता है। 'कृपा' ठीक वह चीज है जिसमें इस सबको बदलने की शक्ति है। केवल 'कृपा' ही उसे बदल सकती है। यह इतना कठोर और इतना भयंकर

विधान है कि तुम एक बार उसमें प्रवेश कर जाओ तो उसमें से बाहर नहीं निकल सकते। और तुम जिस क्षण धरती पर आते हो, उसी क्षण उसमें प्रवेश कर जाते हो। सारा पार्थिव जीवन ऐसा ही है, उसकी रचना इसी तरह हुई है। और तुम जो भी करो, जो भी बात करो, जो कुछ सोचो, जो भी अनुभव करो, उसका कुछ परिणाम होता है। और यह परिणाम कुछ और परिणाम लाता है, और यूं ही चलता रहता है। अब अगर तुम ज्यादा व्यावहारिक दृष्टिकोण चाहते हो तो तुम ऐसे उदाहरण लेकर कह सकते हो : "अगर तुम यह करोगे तो अपने-आप यह फल होगा।" उदाहरण के लिए, मनुष्यों द्वारा संगठित समाजों में यदि तुम कोई अपराध करो तो तुम्हें अपने अपराध के लिए दण्ड मिलेगा। स्वयं अपने अन्तःकरण में, यदि तुम कोई भूल करो तो तुम्हें हमेशा अपनी भूल के लिए कष्ट सहना पड़ता है। और कानून में, जैसा मनुष्य ने बनाया है, हमेशा यह कहा जाता है कि कानून न जानना कोई बहाना नहीं है। यदि तुम कानून से अपरिचित हो तो भी तुम्हें सजा दी जाती है। अगर तुम कोई भूल करते हो, यह जाने बिना कि यह भूल है, तो इससे तुम बच नहीं सकते, तुम्हें सजा मिलती है। हां 'प्रकृति' में भी ऐसा होता है। यदि तुम, यह जाने बिना कि यह विष है, कोई विष खा लो तो उसका विषैला असर होगा ही। समझे?... जब तक कि 'कृपा' हस्तक्षेप न करे। और चूंकि 'कृपा' सर्वशक्तिमान् है, वह सब कुछ बदल सकती है। मैंने यही बात समझायी है। लेकिन उस 'कृपा' के बिना कोई आशा नहीं। क्योंकि यथार्थ में अज्ञान ही मानवजाति का चिरन्तन तत्त्व रहा है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ५, पृ. ३९८-९९

आन्तरिक देवत्व हमारा मार्गदर्शन करते, हमारी रक्षा करते हैं

भला क्या मूल्य है हमारे आवेगों और हमारी कामनाओं का, हमारी वेदनाओं और उग्रताओं का, हमारे दुःखों और संघर्षों का, हमारे सभी गहरे आन्तरिक उतार-चढ़ावों का जिन्हें हमारी अव्यवस्थित कल्पना अतिरञ्जित नाटकीय रूप दे देती है? क्या मूल्य है इनका उस महान्, उदात्त और दिव्य प्रेम के सामने जो हमारी सत्ता की अन्तरतम गहराइयों से हमारे ऊपर झुका रहता है, हमारी दुर्बलताएं सहन करता है, हमारी भूलें सुधारता है, हमारे

घाव भरता है, हमारी सम्पूर्ण सत्ता को अपनी नवजीवनदायिनी धाराओं से सराबोर कर देता है?

कारण, अन्तःस्थित भगवान् कभी दबाव नहीं डालते, न कोई दावा करते हैं और न भय दिखलाते हैं। वे तो निज का उत्सर्ग करते हैं, अपने-आपको दे देते हैं, वे सकल प्राणियों और सकल वस्तुओं के अन्दर छिपे हुए अपने-आपको भूले रहते हैं। वे कभी किसी को दोष नहीं देते, किसी के गुण-दोष का विवेचन नहीं करते, किसी को अभिशाप नहीं देते, किसी को दण्डित नहीं करते, बल्कि बिना दबाव डाले, बिना बुरा-भला कहे, निरन्तर सुधारने में, बिना धैर्य खोये उत्साह प्रदान करने में और प्रत्येक को उसकी ग्रहणशक्ति के अनुसार सभी सम्पदाओं से समृद्ध कर देने में लगे रहते हैं। भगवान् मां हैं, उनका प्रेम जीवन देता है, पोषण करता है, देखभाल और रक्षा करता है, परामर्श और सान्त्वना देता है। मां सब समझती हैं, अतः सबको सहारा देती हैं, किसी का दोष नहीं पकड़े रखतीं, सबको क्षमा करती हैं, सबके लिए आशा रखती हैं, सबको तैयार करती हैं। वे सब कुछ अपने अन्दर धारण किये हुए हैं, अतः उनके पास ऐसा कुछ नहीं जो सबका न हो। चूंकि वे सब पर राज्य करती हैं, अतः सबकी सेवक हैं; इसी कारण वे सब छोटे-बड़े, जो उनके साथ राजा और उनके अन्दर देवता बनना चाहते हैं, उन्हीं की भांति अपने भाइयों के सेवक बनते हैं, स्वेच्छाचारी शासक नहीं।

कितनी सुन्दर है सेवक की यह विनम्र भूमिका! यह भूमिका है उन सबकी जो सबके अन्दर विराजमान भगवान् को, सब वस्तुओं को जीवन देने वाले भागवत प्रेम को प्रकट करते हैं, उनकी घोषणा करते हैं।...

और जब तक हम उनके उदाहरण का अनुसरण नहीं कर पाते, उनकी भांति सच्चे सेवक नहीं बन पाते, तब तक यही प्रयास करें कि भागवत प्रेम हमारे अन्दर प्रवेश करे और हमें रूपान्तरित करे, हम निःशेष भाव से उन्हें यह अद्‌भुत यन्त्र, अपना भौतिक शरीर, अर्पित करें। वे इसे कर्म के प्रत्येक स्तर पर अधिक-से-अधिक कार्य करने-योग्य बना देंगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड २, पृ. ४९-५०

अपनी अभीप्सा में आग्रही रहो और वह पूरी होगी। —श्रीमां

सृष्टि में भागवत उपस्थिति

यह आध्यात्मिक उपस्थिति, यह अन्तःप्रकाश हर एक में होता है, यहां तक कि बिलकुल शुरू से होता है...। असल में, यह सब जगह है। मैंने इसे बहुत बार कुछ पशुओं में भी देखा है। अमुक संयम और सुरक्षा की नींव में यह एक चमकते बिन्दु की तरह होती है, एक ऐसी चीज जो अर्ध-चेतन अवस्था में भी बाकी सृष्टि के साथ सामञ्जस्य बनाये रखना सम्भव करा देती है ताकि ऐसे विध्वंस आम और स्थायी न बन जायें जिनका निवारण न हो सके। इस उपस्थिति के बिना प्राणिक हिंसा और आवेशों से उपजी अव्यवस्था ऐसी होगी जो किसी भी क्षण व्यापक विध्वंस ला सकती है, एक तरह का पूर्ण विध्वंस जो 'प्रकृति' की प्रगति को रोक देगा। यही वह उपस्थिति है, वह आध्यात्मिक ज्योति है—जिसे लगभग आध्यात्मिक चेतना कहा जा सकता है—जो प्रत्येक जीव में है, प्रत्येक वस्तु में है। इसी के कारण सब विषमताओं, आवेगों और उग्रताओं के होते हुए भी कम-से-कम कुछ व्यापक सामञ्जस्य तो रहता ही है जो प्रकृति के कार्य को संसिद्ध होने देता है।

मनुष्य में यह उपस्थिति काफी प्रत्यक्ष हो जाती है, यहां तक कि सर्वाधिक अविकसित मनुष्य में भी। यहां तक कि अति दानवीय मानव में भी, ऐसे मानव में भी जिसे देख कर राक्षस या दानव के अवतार का ही आभास मिलता है, उसमें भी कुछ ऐसी चीज होती है जो दुर्दमनीय रूप से नियन्त्रण करती है—बुरे-से-बुरे मनुष्य के लिए भी कुछ चीजें असम्भव होती हैं। और इस उपस्थिति के बिना, यदि जीवन अनन्य भाव से विरोधी शक्तियों द्वारा, प्राण की शक्ति द्वारा अधिकृत होता तो यह असम्भवता न रहती।

हर बार, जब इन विरोधी या आसुरी शक्तियों की लहर धरा पर फैलती है तो लगने लगता है कि अब इस अस्तव्यस्तता और संत्रास को फट पड़ने से कोई रोक न सकेगा, और सदा ही, एक निश्चित घड़ी में, बिलकुल आशातीत और अव्याख्येय रूप में एक नियन्त्रण हस्तक्षेप करता है और वह लहर थाम ली जाती है, पूर्ण विध्वंस नहीं हो पाता। और यह होता है जड़-पदार्थ में उसी 'उपस्थिति' के कारण—परम प्रभु की 'उपस्थिति' के कारण।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड ९, पृ. ३६९-७०

एकमात्र उपचार

देखो, जगत् की वर्तमान अवस्था में परिस्थितियां हमेशा कठिन रही हैं। सारा संसार कलह और संघर्ष की स्थिति में है—अभिव्यक्त होने की इच्छुक सत्य और प्रकाश की शक्तियों और उन सबके बीच संघर्ष जो बदलना नहीं चाहता, जो ऐसे भूतकाल का प्रतिनिधि है जो स्थिर और कठोर है, जो जाने से इन्कार करता है। स्वभावतः, हर व्यक्ति अपनी कठिनाइयों का अनुभव करता है और उसे उन्हीं बाधाओं का सामना करना पड़ता है।

तुम्हारे लिए बस एक ही रास्ता है। वह है पूर्ण, समग्र और बिना शर्त के समर्पण का। इससे मेरा मतलब है, न केवल अपनी क्रियाओं, कर्मों, महत्त्वाकांक्षाओं को छोड़ देना बल्कि अपने सभी भावों को भी छोड़ देना, यानी, तुम जो करते हो, तुम जो हो वह सब अनन्य रूप से भगवान् के लिए हो। तब तुम अपने-आपको मानव प्रतिक्रिया के घेरे से ऊपर अनुभव करते हो—केवल उनसे ऊपर ही नहीं बल्कि 'भागवत कृपा' की दीवार द्वारा उनसे सुरक्षित रहते हो। एक बार तुम्हारे अन्दर कामनाएं न रहें, आसक्तियां न रहें, एक बार तुम मनुष्यों से, चाहे वे कोई भी क्यों न हों, पारितोषिक लेने की समस्त आवश्यकताओं को त्याग दो—यह जानो कि एकमात्र पाने-योग्य पारितोषिक वह है जो परम प्रभु से आता है और जो कभी निराश नहीं करता—एक बार तुम सभी बाहरी सत्ताओं और चीजों की आसक्ति छोड़ दो, तो तुम तुरन्त अपने हृदय में उस परम उपस्थिति, उस परम शक्ति, उस परम कृपा का अनुभव करते हो जो हमेशा तुम्हारे साथ होती है।

कोई और उपचार नहीं है। बिना अपवाद **हर एक के लिए** यही एकमात्र उपचार है। वे सभी जो पीड़ित हैं, उनसे यही एक बात कहनी चाहिये : समस्त दुःख इस बात का सूचक है कि समर्पण समग्र नहीं है। तो जब तुम अपने अन्दर इस तरह के "प्रहार" का अनुभव करो तो यह कहने की बजाय, "ओह, यह खराब है" या "यह परिस्थिति कठिन है", तुम यह कहो, "मेरा समर्पण पूर्ण नहीं है," तो यह ठीक होगा। और फिर तुम उस परम कृपा का अनुभव करोगे जो तुम्हारी सहायता करती है, जो तुम्हारा पथ-प्रदर्शन करती है और तुम आगे बढ़ते चले जाते हो। और फिर एक दिन तुम उस शान्ति में उभर आते हो जिसे कुछ भी विचलित

नहीं कर सकता। तुम सभी प्रतिरोधी शक्तियों, प्रतिरोधी गतिविधियों, प्रहारों, गलतफहमियों, दुर्भावनाओं का उत्तर उसी मुस्कान के साथ देते हो जो 'भागवत कृपा' में पूर्ण विश्वास से आती है। और बचने का यही **एकमात्र** तरीका है, कोई दूसरा नहीं है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. ४४१-४२

मृत्यु के बाद श्रीमां का संरक्षण

हर रोज रात को मैं एक ही समय पर, विशुद्ध पार्थिव वातावरण तथा चैत्य वातावरण के बीच, प्राण के ऊपर संरक्षण का एक पुल बनाने में लगी रहती थी ताकि लोगों को प्राण में से होकर गुजरना न पड़े (क्योंकि जो लोग सचेतन हैं, लेकिन उन्हें ज्ञान नहीं है, उनके लिए यह रास्ता बड़ा कठिन होता है—नारकीय।) मैं यह पथ बना रही थी, यह कार्य कर रही थी (यह शायद १९०३ या १९०४ की बात रही होगी, मुझे ठीक-ठीक याद नहीं)। मैंने महीनों पर महीने यह काम किया। उस दौरान कई असाधारण घटनाएं घटीं—असाधारण। मैं इसके बारे में तुमलोगों को कई कहानियां सुना सकती हूं।...

फिर, जब मैं तेमसेम गयी तो मैंने मादाम तेओं को इसके बारे में बतलाया। उन्होंने कहा, "हां, यह तुम्हारे काम का एक हिस्सा है जिसके लिए तुम धरती पर आयी हो। वह प्रत्येक व्यक्ति, जिसके अन्दर की चैत्य सत्ता जरा-सी भी जाग्रत् है, जो तुम्हारा 'प्रकाश' देख सकता है, वह प्रत्येक, अपनी मृत्यु के समय, वह जहां कहीं भी शरीर छोड़े, इसका कोई महत्त्व नहीं, सीधा तुम्हारे 'प्रकाश' में चला आयेगा, और भवसागर से पार कराने में तुम उसकी मदद करोगी।" और यह कार्य निरन्तर चल रहा है। निरन्तर। इसने मुझे पर्याप्त मात्रा में अनुभूतियां प्रदान कीं और मुझे पता लगा कि जब व्यक्ति शरीर छोड़ते हैं तो उन्हें क्या-क्या होता है। मुझे हर तरह के अनुभव हुए, हर तरह के उदाहरण हैं मेरे सामने—यह सचमुच रुचिकर विषय है।

मृत्यु के बाद श्रीअरविन्द का संरक्षण

'म' की बहन का कुछ समय पहले ही देहान्त हुआ (आन्तरिक रूप से वह बड़ी बुरी हालत में थी—उसके अन्दर जरा भी श्रद्धा नहीं थी)।

हां, तो उस दिन, जैसे ही मैंने सुना कि वह अपनी अन्तिम सांसें गिन रही है, मैं ऊपर अपने कमरे में श्रीअरविन्द के सम्पर्क में थी, एक तरह से हमारी बातचीत हो रही थी (ऐसा प्रायः होता है), और मैंने उनसे पूछा, "ऐसे लोगों के साथ क्या घटता है जब वे यहां आश्रम में प्राण त्यागते हैं?" "देखो," उन्होंने उत्तर में कहा, और मैंने उसे शरीर छोड़ते हुए देखा; उसके ललाट पर मैंने ठोस स्वर्णिम प्रकाश से बना (बहुत ज्योतिर्मय नहीं, लेकिन बहुत ठोस) श्रीअरविन्द का प्रतीक देखा। तो यह है बात। और इस चिह्न की उपस्थिति के साथ फिर उसकी आन्तरिक या मनोवैज्ञानिक अवस्था का कोई महत्त्व नहीं रहता—यानी, वह शान्ति, बहुत शान्ति के साथ गुजरी। श्रीअरविन्द ने मुझसे कहा, "जो लोग आश्रम में रह चुके हैं, जब शरीर छोड़ते हैं उन्हें अपने-आप ही यह संरक्षण प्राप्त हो जाता है, भले उनकी आन्तरिक अवस्था कैसी भी क्यों न हो।" मैं नहीं कह सकती कि मैं आश्चर्य में पड़ गयी, लेकिन उस महान् शक्ति के प्रति अहोभाव से भर उठी जिसकी मात्र उपस्थिति से, जो व्यक्ति यहां रहता और शरीर छोड़ता है, उसके लिए इस भवसागर को आराम से पार करना चरम रूप से आसान हो जाता है।

२४ जून १९६१ *श्रीमां का एक शिष्य के साथ वार्तालाप* से

श्रीमां का श्वेत प्रकाश

मेरे बच्चे, जो इस प्रकाश से घिरा रहता है उसे विशेष सुरक्षा प्राप्त होती है, वह विशेष व्यक्ति होता है, कोई चीज उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। यह सर्वोत्तम संरक्षण है जिसकी व्यक्ति आशा कर सकता है। यह तुम्हारे प्राण को घेरे रहता है, सर्वत्र समान रूप से कार्य करता है। तुम्हें इससे बेहतर सुरक्षा प्राप्त नहीं हो सकती, यह चरम सुरक्षा है। वह जो इससे घिरा रहता है, प्राचुर्य में, प्रसन्नता में विचरता है; तब 'कृपा' उसका भार अपने हाथों में ले लेती है। यह विरल चीज है। वह स्वतन्त्रता में चलता है, क्योंकि कोई भी चीज उसका स्पर्श नहीं कर सकती: उसके रास्ते की बाधक विरोधी शक्तियां और अज्ञान की शक्तियां अब उसके पास फटक तक नहीं सकतीं, क्योंकि वह पूरी तरह मेरे प्रकाश से घिरा रहता है। उसके चारों ओर प्रकाश का ऐसा रक्षा-कवच होता है जिसके आर-पार

कोई चीज नहीं जा सकती। यह सचमुच पूर्ण सुरक्षा है।

बहुत लोग इसे नहीं रख पाते, बहुत कम, बहुत, बहुत ही कम लोगों के पास इसे बनाये रखने की क्षमता होती है। प्रकाश को निरन्तर बनाये रखना बहुत ही कठिन होता है। अगर तुम्हारे अन्दर दिन-रात उसे बनाये रखने की शक्ति हो, उससे घिरे रहने की सामर्थ्य हो, तो यह विलक्षण बात होगी, क्योंकि तब तुम्हारे पास दुनिया की सर्वोत्तम सुरक्षा होगी। ... यह प्रकाश पूर्ण नीरवता और अखण्ड श्रद्धा में ही बना रहता है। एक बार दूसरी तरफ झुक जाने से यह तिरोहित हो जाता है। इसी कारण इसे बनाये रखना कठिन है। अगर तुम शान्त-नीरव रहो तो निस्सन्देह तुम इसे अपने साथ लिये रहोगे। अगर व्यक्ति कोशिश करे तो इसमें सफल होगा।

यह मेरा तेजस्वी प्रकाश है जो सभी बुरी शक्तियों से तुम्हारी रक्षा करेगा। और तुम इस पारदर्शी डिब्बे में एकदम सुरक्षित अनुभव करोगे, बर्फ की तरह है यह। यह बर्फ कोमल और शान्तिदायक होती है। तुम्हें हर्षद संवेदन होता है, मानों तुम ऐसे प्रकाश से पूरी तरह घिरे हो जो तुम्हारी रक्षा करता है, तुम्हारा पथ-प्रदर्शक है और जो तुम्हारे विश्वास को भी बढ़ाता है। सचमुच यह सभी प्रहारों से रक्षा करता है, चाहे वह प्राणिक हो या कोई और—हां, तभी, जब तुम इस प्रकाश के लिफाफे में रहो।

इस तरह, मेरे पास प्रकाशों की एक शृंखला है जो ऊंचे, अधिक ऊंचे उठते रहते हैं, जब तक कि सभी एक शुभ्र-श्वेत प्रकाश में नहीं बदल जाते। यह कागज की तरह सफेद है। *(श्रीमां अपनी मेज पर रखे कागज की ओर इशारा करती हैं)* यह शुद्ध श्वेत है, यह ठोस रूप से सफेद दीखता है और यह प्रकाश, जो मेरा अपना प्रकाश है—शुभ्र-श्वेत प्रकाश—इसके अन्दर अद्वितीय शक्ति है। इसे पाना बहुत कठिन है, यह बहुत, बहुत दूर स्थित है, वहां तक पहुंचने के लिए व्यक्ति को स्तर पर स्तर पार करने होते हैं। यही सच्चा प्रकाश है, और अगर व्यक्ति इसकी शरण में आ जाये —मेरे शुभ्र-श्वेत प्रकाश की—तब उसके पास ऐसी सुरक्षा, ऐसी अतुलनीय सहायता होती है कि वह हर किसी चीज पर विजय पा सकता है और कोई चीज उसे छू भी न पायेगी। क्योंकि जब व्यक्ति इस प्रकाश में होता है, विरोधी शक्तियां जैसे ही इसके सम्पर्क में आती हैं, तुरन्त विलीन हो जाती हैं। इस श्वेत प्रकाश के सम्मुख **कोई भी** विरोधी शक्ति टिक नहीं

सकती। तब व्यक्ति 'भगवान्' के हाथों में होता है, 'उनसे' घिरा होता है। यह उच्चतम सम्भव वस्तु है...

अगर व्यक्ति के अन्दर श्रद्धा हो, वह श्रद्धा जो यहां से आती है *(हृदय की ओर संकेत)*, सच्ची श्रद्धा, तब प्रकाश विलीन नहीं हो सकता, वह बना रहता है। अगर व्यक्ति शान्त हो और इस श्रद्धा से लैस हो, अमूर्त तलवार की भांति श्रद्धा *(श्रीमां अपने हाथ से मुद्रा दिखाती हैं)* जो हिलती नहीं, जो बिना डगमगाए, सीधा ऊपर की ओर जाती है, हां, तो, ऐसी श्रद्धा हमेशा मेरे प्रकाश से घिरी रहती है। वह व्यक्ति को कभी नहीं छोड़ती, क्योंकि वह उचित परिवेश पा लेती है।

मेरे बच्चे, तुम्हें इसे विकसित करना चाहिये, इस श्रद्धा को, तब सब कुछ भली-भांति चलेगा। यह अपूर्व, अलौकिक वस्तु है—मेरी चरम सुरक्षा में रहना।

Blessings of the Grace २ जुलाई १९६७

सच्चा बल और सुरक्षा हृदय में स्थित 'भागवत उपस्थिति' से आते हैं।

अगर तुम इस 'उपस्थिति' को हमेशा अपने अन्दर रखना चाहो तो सावधानी के साथ वाणी, आचार और क्रिया से समस्त अशिष्टता और गंवारूपन को दूर रखो।

तुम्हारी श्रद्धा तुम्हें 'परम पुरुष' के संरक्षण में रख देती है और वे सर्वशक्तिमान् हैं।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १२, पृ. १४१, २८३

यह सच है कि भगवान् का संरक्षण हमेशा हमारे चारों ओर रहता है, लेकिन वह पूरी तरह तभी काम करता है जब हम अपरिहार्य संकटों से घिरे हों; यानी, अगर संकट अचानक ऐसे समय उठ खड़े हों जब हम भगवान् के लिए कुछ काम कर रहे हों, तब संरक्षण अच्छे-से-अच्छा काम करता है। लेकिन कोई ऐसा काम हाथ में ले लेना जो बिलकुल अनिवार्य न हो, जो निश्चित रूप से उपयोगी भी न हो पर हो बहुत ज्यादा संकटाकीर्ण, और तब यह आशा रखना कि भगवान् तुम्हें सभी सम्भव संकटों से बचायेंगे,

ऐसी क्रिया है मानों भगवान् को चुनौती दी जा रही हो और भगवान् इसे कभी स्वीकार न करेंगे।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १४, पृ. ३५६

ईर्ष्या, स्वार्थपूर्ण असन्तोष और आहत दर्प तुम्हें भागवत संरक्षण से बाहर खींच कर चेतना के द्वार विरोधी आक्रमणों के लिए खोल देते हैं।

भौतिक सुरक्षा भगवान् के प्रति सम्पूर्ण समर्पण और कामनाओं के अभाव से ही सम्भव होती है।

—'श्रीमातृवाणी', खण्ड १५, पृ. २२, ५२

जब तुम लोगों के बीच में हो तो 'परम प्रभु' को अपने और लोगों के बीच में रखो। इस तरह तुम्हारी सारी सत्ता सुरक्षित रहेगी। तुम कोये की तरह उनकी सुरक्षा में रहोगे और कोई भी चीज तुम्हारी उस सुरक्षा को भेद न पायेगी।

Mother you said so १७ फरवरी १९६७

'नाम' की शक्ति में तुमने जिस शक्ति और जिस सुरक्षा का अनुभव किया वह उन सभी का अनुभव है जिन्होंने समान श्रद्धा तथा भरोसे के साथ नाम-जप किया। सुरक्षा के लिए जो लोग हृदय से पुकारते हैं उन्हें वह कभी नहीं छोड़ सकती।

CWSA खण्ड २५, पृ. ३०८

विरोधी शक्तियों को दूर रखने का मन्त्र

मेरे 'प्रभु' के नाम पर,
मेरे 'प्रभु' के लिए,
मेरे 'प्रभु' के संकल्प के साथ,
मेरे 'प्रभु' की शक्ति के द्वारा
इसी क्षण से हमें तंग करना बन्द कर दो।

'पुरोधा' :

दैनन्दिनी

सितम्बर

१. किसी चीज से न डरो : भगवान् हमेशा हर सच्ची अभीप्सा का उत्तर देते हैं और उन्हें पूरे हृदय के साथ जो कुछ दिया जाये उसे लेने से कभी इन्कार नहीं करते। इस तरह तुम इस निश्चिति की शान्ति में रह सकते हो कि तुम्हें भगवान् ने स्वीकार कर लिया है।

२. प्रश्न : मां, मेरा जीवन शुष्क है। वह हमेशा ऐसा ही रहा है, मेरे जीवन की शुष्कता बराबर बढ़ती रहती है।

उत्तर : यह किन्हीं बाहरी परिस्थितियों पर नहीं, तुम्हारी भीतरी स्थिति पर निर्भर करता है। यह इसलिए होता है क्योंकि तुम अपने मन के बहुत ही छिछले स्तर पर रहते हो। तुम्हें अपनी चेतना में कुछ गहराई पाने की कोशिश करनी चाहिये और फिर वहीं निवास करना चाहिये।

३. हर एक से बस उतनी ही मांग की जाती है जितना उसके पास है, जितना वह है, उससे अधिक नहीं पर उससे कम भी नहीं।

४. खोजने में एक आनन्द है, प्रतीक्षा करने में आनन्द है, अभीप्सा करने में आनन्द है, कम-से-कम उतना ही अधिक जितना अधिकार कर लेने में है।

५. साहसी बनो और अपने बारे में इतना अधिक न सोचो। तुम दुःखी और असन्तुष्ट इसलिए रहते हो क्योंकि तुम अपने छोटे-से अहंकार को अपनी तन्मयता का केन्द्र बना लेते हो। इन बीमारियों का बड़ा इलाज है, अपने-आपको भूल जाना।

६. चैत्य पुरुष दुःखी नहीं होता; मन, प्राण और अज्ञानी मनुष्य की सामान्य चेतना दुःख झेलती है।

७. प्रश्न : मेरे हृदय को खाली न छोड़ो मां।

उत्तर : मैं हमेशा तुम्हारे हृदय में रहती हूं।

८. प्रश्न : मेरे अन्दर चैत्य पुरुष सोया हुआ है।

उत्तर : चैत्य सोया हुआ नहीं है। उसके साथ सम्बन्ध ठीक तरह से नहीं बना है क्योंकि मन बहुत ज्यादा शोर मचाता है और प्राण बहुत

बेचैन है।

९. अपने हृदय को बेकार की बातों से भरने की जगह तुम्हें बड़े आग्रह के साथ उसे हर चीज से खाली करना चाहिये, पूरी तरह सभी चीजों से खाली, चाहे वे छोटी हों या बड़ी—ताकि उस महान् रिक्तता की शक्ति "अद्‌भुत उपस्थिति" को वह अपनी ओर खींच सके। तुम्हें उस परम कृपा का उसके योग्य मूल्य चुकाना सीखना चाहिये।

१०. निश्चय ही उदास और दुःखी होकर तुम भगवान के पास नहीं पहुंचते। तुम्हें हमेशा अपने हृदय में दृढ़ श्रद्धा और विश्वास तथा मस्तिष्क में विजय की निश्चिति रखनी चाहिये। मेरे और तुम्हारे बीच जो छायाएं आती और मुझे तुम्हारी दृष्टि से छिपाती हैं उन्हें निकाल बाहर करो। निश्चिति के शुद्ध प्रकाश में ही तुम मेरी उपस्थिति के बारे में सचेतन हो सकते हो।

११. तुम जितने अधिक दुःखी होओगे और रोना-धोना करोगे उतने ही अधिक मुझसे दूर होते जाओगे। भगवान् दुःखी नहीं हैं और भगवान् को पाने के लिए तुम्हें समस्त दुःख और समस्त भावुक दुर्बलता को अपने से बहुत दूर फेंकना होगा।

१२. प्राण कामनाओं और ऊर्जाओं, आवेगों और प्रेरणाओं का, भीरुता और साथ ही शौर्य का स्थान है। उसमें लगाम लगाने का अर्थ है इन सबको भागवत इच्छा की ओर मोड़ना और उस इच्छा के आधीन करना।

१३. हमेशा प्रलोभन से बचना ज्यादा अच्छा होता है।

१४. तुम्हें केवल शान्त विश्वास के साथ डटे रहना चाहिये और प्राण हड़ताल करना भूल जायेगा।

१५. अवसाद हमेशा विवेकहीन होता है और तुम्हें कहीं नहीं ले जाता। वह योग का सबसे सूक्ष्म शत्रु है।

१६. एक प्रार्थना—हे प्रभो, मेरी समस्त सत्ता को जगा ताकि वह तेरे लिए आवश्यक यन्त्र, पूर्ण दास हो सके।

१७. प्रश्न : मैं जानता हूं मेरे अन्दर बहुत-सी गलत चीजें हैं लेकिन कोई खास आधारभूत गड़बड़ भी होनी चाहिये, मां, वह क्या है?

उत्तर : तुम्हारे लिए कोई विशेष बात नहीं है। एक ही कठिनाई सभी मनुष्यों में मौजूद है—भौतिक मन का घमण्ड और उसकी अन्धता।

१८. प्रश्न : मधुर मां, मुझ गरीब के लिए आपका प्यार ध्रुवतारा है और मैं उसके लिए कृतज्ञ हूं।

उत्तर : मेरे प्यारे बालक, मेरा प्रेम तुम्हें लक्ष्य तक ले जाना चाहता है, और उसकी विजय निश्चित है।

१९. भागवत प्रेम तुम्हारा लक्ष्य हो।

शुद्ध प्रेम तुम्हारा मार्ग हो।

अपने प्रेम की ओर सच्चे रहो और तुम सभी कठिनाइयों पर विजय पा लोगे।

२०. अर्पण का रूप चाहे जैसा हो जब वह सच्चाई के साथ किया जाता है तो हमेशा अपने अन्दर भागवत प्रकाश की एक चिनगारी लिये रहता है जो पूर्ण सूर्य में विकसित हो सकती और समस्त सत्ता को आलोकित कर सकती है।

२१. तुम मेरे प्रेम के बारे में विश्वस्त रह सकते हो, तुम मेरी सहायता के बारे में विश्वस्त रह सकते हो।

२२. मेरे बहुत प्यारे बालक,

मेरे प्रेम में निवास करो, उसे अनुभव करो, उससे भर जाओ और सुखी रहो—कोई चीज मुझे इससे ज्यादा खुश नहीं कर सकती।

२३. प्रश्न : मधुर मां, जैसे-जैसे मेरा शरीर दुर्बल होता जायेगा, प्राणिक कामनाएं धीरे-धीरे गायब हो जायेंगी न?

उत्तर : हर्गिज नहीं, बल्कि इसके एकदम विपरीत। प्राण की कामनाओं को जीतने के लिए तुम्हारे अन्दर बढ़िया सन्तुलन और अच्छा स्वास्थ्य होना जरूरी है।

२४. जो चीज महत्त्वपूर्ण है वह है भय को उठा फेंकना। भय ही तुम्हें बीमार करता है और भय के कारण ही रोगमुक्त होना इतना कठिन होता है। सारे भय को जीतना चाहिये और उसके स्थान पर भागवत कृपा पर पूर्ण विश्वास लाना चाहिये।

दवाइयों के बिना काम चलाने के लिए तुम्हारे अन्दर दृढ़ श्रद्धा होनी चाहिये।

२५. तुम्हें कभी आशा या श्रद्धा न खोनी चाहिये—कोई चीज असाध्य नहीं है। और भगवान् की शक्ति पर कोई हदबन्दी नहीं की जा सकती।

२६. तुम्हें आन्तरिक शान्ति को पाना और हमेशा बनाये रखना चाहिये। वह शान्ति जो शक्ति लाती है, उससे ये सब छोटी-मोटी विपत्तियां गायब हो जायेंगी।

२७. तुम्हारे लिए यह बहुत ज्यादा अच्छा होगा कि तुम अपने-आपको इसमें व्यस्त न रखो कि दूसरे क्या कहते हैं।

२८. जब तुम निर्दोष हो तो तुम्हें दुर्व्यवहार के बारे में एकदम उदासीन होना चाहिये क्योंकि तब तुम्हारे अन्दर कोई ऐसी चीज नहीं होती जिसके लिए तुम अपने-आपको दोष दो और अपने-आपको दिलासा देने के लिए तुम्हारे पास अन्तःकरण की स्वीकृति होती है।

२९. अगर तुम विरोधी शक्तियों को तृप्त करना शुरू करोगे तो वे तुमसे अधिकाधिक खींचना शुरू करेंगी और कभी सन्तुष्ट न होंगी।

३०. चिन्ता न करो। बस अपने अन्दर सदा चीजों को अच्छी तरह करने का संकल्प रखो।

क्या ईश्वर नहीं रहे?

प्रोटेस्टेंट चर्च के संस्थापक सर मार्टिन लूथर किंग एक बार बड़े उदास और चिन्तित बैठे हुए थे। उनकी पत्नी बड़ी बुद्धिमानी और सूझ-बूझ वाली महिला थीं। अपने पति को इस तरह कठिनाइयों से घिरा हुआ तथा चिन्ताओं में डूबा हुआ देख कर वे भी व्यथित हो गयीं। पर उन्हें ईश्वर पर अटूट विश्वास था, अतः उन्होंने काली पोशाक धारण की और पति के सामने जा बैठीं।

पति उन्हें काली वेश-भूषा में देख कर आश्चर्य से बोले—कौन-सी बुरी खबर आयी है, जो तुमने यह मातमी लिबास पहन लिया है? पत्नी—मुझे लगता है कि शायद अब ईश्वर नहीं रहे... इसीलिए मैं मातम मना रही हूं। मार्टिन—क्या बकवास कर रही हो! क्या कभी ऐसा हो सकता है? ईश्वर तो अजर-अमर हैं... क्या कभी वे मर सकते हैं? पत्नी—अगर वे हैं तो आप फिर इतने उदास और दुःखी होकर क्यों बैठे हैं? मार्टिन मुस्कुराने लगे। सोचने लगे... ठीक ही तो कह रही है मेरी पत्नी। जब सब कुछ उनकी मर्जी से ही होता है तो... फिर मैं क्यों चिन्ता से मरा जा रहा हूं?

नीरवता में...

एक दफा एक किसान की घड़ी गोशाला में खो गयी। अपनी सारी गोशाला छान लेने के बाद उसे एहसास हुआ कि हो न हो, गायों के भुसौरे में घड़ी गिर गयी होगी। वह घड़ी उसके लिए खास मायने रखती थी। भुसौरे को खंगाल-खंगाल कर देखने के बाद भी जब उसके हाथ कुछ न लगा तो बिचारा सिर पकड़ कर बैठ गया। तभी बाहर सड़क पर खेलते, शोर मचाते बच्चे उसे दीखे। उनके पास जाकर उसने ऐलान किया, "बच्चो, इस भुसौरे में मेरी घड़ी खो गयी है, जो ढूंढ़ निकालेगा उसे ईनाम मिलेगा।" शोरगुल और बढ़ गया, हर एक को ईनाम पाने का लालच था, लेकिन किसी के हाथ कुछ न लगा...! निराश, हताश उन्होंने भी हार मान ली और सब लटकाये चेहरे लिये अपने-अपने घर की ओर रवाना हो गये। सब? नहीं, एक छोटा बच्चा पलट कर किसान के पास आकर बोला, "भय्याजी, मुझे एक और मौका देंगे आप?"

किसान मुस्कुराया, मन में सोचा, ठीक है, मुझे क्या फर्क पड़ता है। बच्चे से बोला, "ठीक है बेटा, इतने न ढूंढ़ पाये, अब तुम अकेले भी कोशिश कर देखो।"

कुछ देर बाद बच्चा घड़ी लेकर प्रकट हो गया। किसान को बड़ा ही अचरज हुआ, बोला, "बेटे, कैसे खोज लाये तुम अकेले इसे? इतने सारे मिल कर तो ढूंढ़ नहीं पाये..."

बच्चो, बता सकते हो, उस छोटे बच्चे को सफलता कैसे मिली?

बच्चा बोला, "भय्याजी, मैंने कुछ नहीं किया, बस जमीन पर चुपचाप बैठ गया। नीरवता की उस शान्ति में घड़ी की टिक्-टिक् ने खुद ही मुझे उसका पता बता दिया...।"

नीरवता में अवलोकन करना जानना ही कौशल का स्रोत है।

*

शान्त नीरवता में ही शक्ति बनाये रखी जा सकती है।

मेरी जिन्दगी में फ़्रेडी का आना

फ़्रेडी क्या थी? एक मक्खी... बस, नाक-भौं सिकुड़ गयीं न आप सब की? वही घरेलू मक्खी जिसे देखते ही छोटे-बड़े सभी उसका काम तमाम करने पर उतारू हो जाते हैं, अगर वह हमारे हाथ-पैर पर विराजमान हो तो हलके से हाथ को हवा में उठा कर, ध्यानमग्न होकर हम उस पर ऐसा तमाचा जड़ने की योजना बना कर प्रहार करते हैं कि अब तो इस शैतान मक्खी को यम का दरवाजा दिखलाना ही है, लेकिन सब जानते हैं कि वह अदना-सी मक्खी कभी भी हमारी चपेट में नहीं आती, वह तो फुर्र-फुर्र कर, उड़ान की जीभ बिराती हुई हमारे ही शरीर पर कभी यहां तो कभी वहां, लगातार अपना आसन बदल-बदल कर जमी ही रहती है, और फल यह निकलता है कि अपने ही हाथों हमीं पिटते रहते हैं!! तो, मक्खी का नाम लेते ही आप सब की भौहों का सिर पर चढ़ जाना वाजिब ही था, और समाज से दुत्कारे हुए ऐसे असामाजिक प्राणी पर कोई लेख लिखने तो नहीं बैठता न? हां, सच है, इस "सताऊ" जीव की सभ्य समाज में क्या बिसात? लेकिन 'जे. ऐलन बून' महाशय ऐसा हरगिज नहीं सोचते; यह सच है कि मक्खियों के बारे में उनका भी कभी ऐसा ही ख्याल था, लेकिन फ़्रेडी ने उनका नजरिया बदल दिया। अब देखना चाहेंगे क्या आप भी उनकी नजर से मक्खी-समाज की एक झलक? तो सुनिये—

फ़्रेडी से मेरी पहली मुलाकात एक सवेरे स्नानागार में तब हुई जब मैं अपनी दाढ़ी बना रहा था। अचानक एक मक्खी मेरे शीशे के बीचोबीच उतर आयी, उसे कुछ तिरछी निगाह से देखते हुए मैं सोचने लगा कि आखिर इसने यही जगह क्यों चुनी? क्या यह भी अपनी शकल शीशे में निहारने आ गयी? पता नहीं क्यों, मेरा हाथ उसे उड़ाने के लिए न उठा क्योंकि अचानक मेरे दिमाग के कल-पुरजे खड़खड़ाने लगे, मैं सोचने लगा —हम मनुष्यों की दृष्टि में भले यह प्राणी कितना भी तुच्छ क्यों न हो, लेकिन इसकी तरह क्या हम तथाकथित उच्च मानवों को हवा में आराम से उड़ कर, जहां खुशी विराजमान होने का सौभाग्य प्राप्त है? हम जो अपने-आपको इतना महान् समझते हैं, बस जमीन पर ही अपनी औकात के अनुसार जरा बहुत उछल-कूद मचा सकते हैं; इन "दुत्कारू" मक्खियों

की तरह दीवारों, छतों पर चलने, वहां कभी उड़ान के खेल खेलने तो कभी चुपचाप एक जगह पर बैठ कर ध्यान लगाने, वैसे ही उलटे लटके (मनुष्यों की नजरों में) सो जाने की काबिलियत रखते हैं क्या हम? फिर कौन हुआ तुच्छ और कौन महान्??

यहां मैं उस मक्खी पर मानसिक शोध कर रहा था, वहां वह शीशे पर से रफूचक्कर हो गयी। जब होश आया तब हजामत पूरी की।

बाद में नाश्ते की मेज पर फिर मेरा मक्खी से साक्षात्कार हुआ। बड़े मजे से मेरी तश्तरी के एक कोने पर वह मक्खी-विमान उतरा, मैंने पहचानने की कोशिश की... क्या यह शीशेवाली ही है या कोई नयी? लेकिन मक्खियों में फर्क करने के लिए हम मनुष्यों को तीसरी आंख की जरूरत होगी; खैर, नयी हो या पुरानी, मैंने उस पर यहां भी झपट्टा मारने की कोशिश न की, मैं इसी सोच में पड़ गया कि इन मक्खियों को मेरे बन्द घर में प्रवेश कहां से मिल रहा है जहां हवा भी सहम-सहम कर घुसती है। हां, तो, नाश्ते के बाद अपने घर के दफ्तर में काम करने बैठा नहीं कि फिर उस लघु प्राणी के विराट् दर्शन हुए। मेरे टाइप राइटर के पीले कागजों के ढेर पर खड़ी थी वह!

"अगर इस घर में तीन मक्खियां हैं तो एक बात है, लेकिन अगर सवेरे से मैंने जिन-जिन को देखा वे सब एक ही हैं तो बात अलग है।" मैंने खुद को ही समझाते हुए कहा।

जल्दी-जल्दी मैं स्नानागार की ओर बढ़ा, शीशे पर कोई मक्खी न थी, खाने की मेज पर भी कोई न दीखी, पलट कर अपने दफ्तर में आया, वहां भी किसी के दर्शन न हुए। मैं वहीं बैठ कर इन्तजार करने लगा। शायद दो मिनट ही बीते होंगे कि एक मक्खी आविर्भूत हुई। वह चौके से निकल रही थी। खिड़की से आती सूरज की रौशनी में मानों वह प्रकाश के उड़न-खटोले पर बैठी चली आ रही हो! और तभी मुझे लगा कि यह एक ही है जो मेरे सारे घर का मुआयना करने के लिए मुझे अनेक मालूम हो रही है।

वह लघु प्राणी मेरे सिर के ठीक ऊपर चार-पांच चक्कर काटने के बाद उन्हीं पीले कागजों के ढेर पर आहिस्ता से उतर आया। कुछ पलों के लिए हम दोनों एक दूसरे को अपलक, चुपचाप निहारते रहे, लेकिन शायद दोनों के दिमाग के विचारों का तांता बंधा हुआ था। फिर बड़ी धीरे से मैंने अपनी उंगली—मानसिक रूप से मैं उसमें जितनी दोस्ती भर सकता था

भर कर—पीले कागजों के ढेर पर टिका दी। साथ ही मैंने उससे आंखों ही आंखों में पूछा कि क्या वह मेरी दोस्त बनना पसन्द करेगी ताकि हम दोनों एक दूसरे को ज्यादा करीब से देख सकें, जान सकें? बेतार की भाषा उसके कानों में पड़ी जरूर क्योंकि पलक झपकते न झपकते वह उन कागजों से उड़ कर मेरी उंगली पर आ बैठी! मैं अवाक्! वह भी अवाक्!! "अहा! यह है मेरी Freddie the fly", बचपन में पढ़ी कहानी की मक्खी मेरे लिए जीवन्त हो गयी। बस! उसी क्षण से वह आवारा मक्खी मेरी पालतू फ्रेडी में बदल गयी। शायद उसे भी यह रिश्ता पसन्द आ गया क्योंकि मैंने देखा कि वह कुछ तन कर खड़ी हो गयी और उंगली से उतर कर मेरी पूरी हथेली पर नाचने-सी लगी, मानों किसी अदृश्य बाजे की धुन पर थिरक रही हो... कभी थमी, कभी बढ़ी, कभी अपने पैरों को सिर पर उठा कर रगड़ा तो कभी मेरी उंगली पर फुदकी। उसने मेरी दोस्ती अपना ली है यह देख कर मैं भी खड़ा हो गया और झुक-झुक कर उसका शुक्रिया अदा करने लगा। और साथ ही यह देख कर भी मैंने चैन की सांस ली कि मेरे इस कृतज्ञता-ज्ञापन को खुली खिड़की से किसी भी पड़ोसी ने नहीं देखा!

अब मैं फ्रेडी के साथ खेलने के 'मूड' में आ गया। उंगली को हलका-सा झटका दे मैंने उसे उड़ा दिया, उसे कोई फर्क न पड़ा, वह मेरे सिर के ऊपर चक्कर काटने लगी और मैंने अपनी उंगली बढ़ायी नहीं कि वह उस पर ऐसे उतर आयी मानों यह उसका रोज का अभ्यास हो। मैंने यह खेल बार-बार किया और हर बार वह खेली। मेरा साहस बढ़ा, उतरते समय मैंने दूसरी उंगली से उसे जरा सा छू दिया, वह सामने फिसल गयी लेकिन उड़ी नहीं, अब उंगली के पोर से मैं उस नन्हें जीव को सहलाने लगा मानों किसी गिलहरी की पीठ दुलार रहा होऊं... और उससे ऐसे बतियाने लगा मानों अपने किसी हमउम्र दोस्त के साथ हूं। मैंने सपने में भी कभी न सोचा था कि दूसरों की आंख का कांटा कभी मेरी आंख का तारा बन जायेगी! अब मैं घर पर अकेला न था, फ्रेडी ने मेरी दोस्ती कुबूल कर ली थी। इसका प्रमाण यह था कि जब कभी मैं उसका नाम लेकर पुकारता—चाहे मन में या ऊंची आवाज में—वह उड़ती हुई मेरे सामने आ पहुंचती। ऐसा दोस्त पाकर मैं मन ही मन खुश रहने लगा, औरों से इस दोस्ती का राज खोलना मूर्खता थी, क्योंकि उनकी स्लेट पर दुनिया की सभी मक्खियों के

लिए नालायक शब्द के सभी पर्यायवाची लिखे हुए थे जब कि मैंने अपनी स्लेट पूरी तरह से धो-पोंछ कर, फ़्रेडी के लिए नये रूप में सजा दी थी। और तब मैंने जाना कि जितना मैं फ़्रेडी को देख-परख-जान रहा हूं उतना ही मेरी सोच का दायरा बढ़ता जा रहा है। पहले मेरे लिए भी मक्खी और नफरत शब्द में कोई फर्क न था, लेकिन मेरी जिन्दगी में फ़्रेडी के आने के बाद, एक दिन उसे निहारते हुए उसकी आंखों में मैंने इस सत्य को स्पष्ट पढ़ा—"मनुष्य रिश्तों की सच्चाई के रहस्य को तब तक नहीं समझ सकेगा जब तक वह उन पर 'अच्छे' या 'बुरे' का बिल्ला चिपकाता रहेगा, इसलिए ईश्वर के हर छोटे-बड़े प्राणी में केवल अच्छाई, अच्छाई, यानी प्रत्येक में बसे भगवान् के अंश को ही देखो, बाकी सब कुछ उस परमेश्वर पर छोड़ दो जिसने अपनी सृष्टि के हर एक जीव को खुद अपने ही हाथों से गढ़ा है।" इस नजरिये ने मेरे अन्दर जादू की छड़ी फेर दी। जिन्दगी से चिड़चिड़ाहट छूमन्तर होने लगी, क्योंकि फ़्रेडी ने मेरे कान में जीवन के हर क्षण में, संसार के हर जीव में परमेश्वर की सुन्दरता देखने का मन्त्र जो फूंक दिया था।

हम भले एक दूसरे की भाषा नहीं समझते हों, भले हम दोनों के शरीर के अनुपात में जमीन-आसमान का फर्क हो, भले दुनिया की दृष्टि में हमारा रिश्ता उपहास का विषय हो, लेकिन हम दोनों अनायास गहरे दोस्त बन गये थे...। मैं घर में जहां जाता, फ़्रेडी मेरे साथ रहती, कभी मेरे कन्धे पर साथ चलती तो कभी मेरे सामने अपनी उड़ान की कलाबाजियां दिखाती हुई मेरा साथ देती। अगर कभी मैं जल्दी में होता और इस कमरे से उस कमरे में दौड़ता-भागता अपनी चीजों को समेटता तो वह हमेशा मेरी नजरों के सामने उड़-उड़ कर मानों कहती कि हड़बड़ाओ मत, शान्ति और सतर्कता से करो तो जल्दी कर पाओगे। जिन्दगी की एक और सच्चाई की याद दिलाने के लिए मैं मुस्कुरा कर उसे धन्यवाद देना कभी न भूलता। कभी मैं रेडियो सुनता तो फ़्रेडी भी रेडियो पर खड़ी होकर कार्यक्रम सुनती। आलमारी से किताबें निकालते समय भी वह कहीं आस-पास अपना आसन जमा काम का मुआयना करती रहती। लिखते समय भी वह मेरे आस-पास ही गश्त लगाती रहती या फिर, कभी इधर तो कभी उधर से ताक-झांक करती।

हालांकि फ़्रेडी को मेरे साथ पूरी छूट थी, बस एकमात्र विकल्प यह था कि वह मेरे शरीर के खुले हिस्सों पर अपनी सैर न करे। मैंने उसे अच्छी

तरह समझा दिया कि मनुष्यों की बाहरी त्वचा पर उसका चलना ही मेरी जाति के लोगों में उसकी जाति के प्रति भयानक आक्रोश और हिंसा का रूप धारण कर लेता है। वह यह बात अच्छी तरह समझ गयी थी क्योंकि इस नियम को उसने कभी, कभी नहीं तोड़ा। वह मेरे कपड़ों पर टहलती, मेरी कमीज के कॉलर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक दौड़ लगाती, लेकिन मजाल है कि अनुमति के बिना उसने अपनी सीमा को कभी भी लांघा हो।

यह था "एक अदना-सी मक्खी" का पूरा सहयोग जो न लिखना जानती थी, न पढ़ना; जो न प्रश्न पूछ सकती थी, न कभी कहीं यह देखने जा सकती थी कि संसार के बाकी प्राणी किस तरह जीते हैं; जिसे न जीने के सामाजिक तौर-तरीके आते थे, न जिसकी गिनती कभी भी कहीं होती थी, लेकिन उसी "मक्खी" के अन्दर जानने, समझने-बूझने और अपनी खुशी बांटने की जन्मजात प्रतिभा थी और मेरी वह "पालतू मक्खी" मेरा साया बन गयी थी।

फ़्रेडी और मेरी दोस्ती का चर्चा मेरे दोस्तों में भी चल पड़ा था। कुछ खुल कर मेरे मुंह पर ही हंसते तो कुछ मूंछों ही मूंछों में। कई तो यहां तक कहने लगे कि भई, हमें भी तो उसके कुछ जलवे दिखलाओ न! और मैं मन ही मन कहता कि इतने बारीक रिश्ते को देखने के लिए दूसरी ही नजर चाहिये। इन नजरों से तो तुम्हें बस मेरे आस-पास चक्कर लगाती वही साधारण से साधारण मक्खी दिखलायी देगी जिसके लिए तुम्हारे मानसिक शब्दकोश में बस नाक-भौं सिकुड़ने वाले शब्दों का भण्डार ही मिलेगा।

लेकिन उस रात तो मेरे एक करीबी दोस्त आ ही धमके मेरे यहां फ़्रेडी की एक झलक पाने... देर रात को उन्हें अपने दरवाजे पर देख मैं सकपका गया। उनके आने की वजह ने तो मुझे और भी पसोपेश में डाल दिया। मैंने उन्हें समझाने की बड़ी कोशिश की कि जनाब मैं मदारी और फ़्रेडी कोई बन्दरिया नहीं है कि "दो-दो पैसे" का नाच दिखाने के लिए डमरू बजाते ही थिरकने लगे, लेकिन वे टस से मस न हुए, बोले, "भई, है तो तुम्हारी पालतू मक्खी ही न? हमें भी उसके दर्शन करा दो, जरूर वह दूसरों से अलग होगी।" मैंने इतना तक कहा कि रात को वह घर के किस कमरे में छिपी रहती है मैं नहीं जानता, क्योंकि सवेरा होते ही मुझे उसके दर्शन होते हैं। वे भला कहां मानने वाले थे! कमरे के एक कोने की ऐसी कुरसी पर जा बैठे जहां से सारे कमरे का निरीक्षण वे अच्छी तरह कर सकते

थे। मैं बिचारा हारा। उनकी उम्मीदों पर पानी फेरने के अपने किसी भी मनसूबे को सफल होते न देख मैं अपनी उस आराम-कुरसी पर आ बैठा जिसके हत्थे पर बैठना फ़्रेडी को बहुत प्रिय था। मेरे दोस्त मुझे एकटक ऐसे घूरने लगे मानों कोई बड़ा जादूगर अपनी जादूगरी दिखाने जा रहा हो!

मैं एकदम चुपचाप बैठ गया और मन ही मन फ़्रेडी को पुकारने लगा। आज तक फ़्रेडी और मेरे बीच कभी कोई तीसरा नहीं आया था, पता नहीं वह मेरे दोस्त की दोस्त बनना चाहती भी थी या नहीं। वैसे मैं भी कम पसोपेश में न था, इधर हमउम्र, बचपन के साथी की जिदभरी मांग और उधर हाल ही की बनी गहरी दोस्ती का इम्तेहान; मालूम नहीं मैं अपनी परीक्षा में पास होऊंगा या फ़ेल...

इन्तजार की घड़ियां लम्बाती चली जा रही थीं, मेरे दोस्त की नजरों का कुतूहल निराशा में बदला चला जा रहा था, मैं अपनी पुकार में तीव्रता का पुट बढ़ाता चला जा रहा था और समय खिंचता चला जा रहा था...

आखिरकार मैं ही उठ खड़ा हुआ—मित्र, फ़्रेडी शायद अपने जलवे दिखाना नहीं चाहती है या वह घबरा रही है, तुम यहां आते-जाते रहना, कभी उससे तुम्हारी मुलाकात जरूर हो जायेगी।

मित्र महोदय बड़े अनमने भाव से, निराशा की मूर्ति बने, कुरसी से उठे। मुंह लटकाये मुझसे हाथ मिलाने के लिए जैसे ही उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ाया नहीं कि कमरे में एक बिन्दुरूपी भूचाल सर्राने लगा। वह मेरी फ़्रेडी ही थी। उसने आकर मेरे सिर के ऊपर चक्कर काटने शुरू कर दिये। मेरे दोस्त के चेहरे का गुलाब खिल उठा, मेरी नजरों में भी फ़्रेडी के लिए मान उतर आया।

"क्या यही फ़्रेडी है?" मित्र ने हुलसते हुए पूछा।

कुछ पलों तक हम दोनों ही फ़्रेडी को निहारते रहे, फिर मैंने अपनी उंगली हवा में बढ़ायी। बड़ी नज़ाकत के साथ, हौले से वह उंगली के सिरे पर आ उतरी। मित्र का अचरज उसकी आंखों और चेहरे में समाये न सम रहा था। फ़्रेडी को भी जरूर आश्चर्य हो रहा होगा यह सोच कर मैंने उसे सारी स्थिति समझायी कि मेरे बचपन के इन मित्र के सम्मान में इतनी रात को मैंने उसे तंग किया, साथ ही उससे माफी भी मांगी।

फ़्रेडी ने बुरा नहीं माना था, हम दोनों के बीच अपनी उड़ान की

कलाबाजियां दिखला कर उसने हमें यह जता दिया था। मैंने फ़्रेडी का तहे दिल से शुक्रिया अदा कर उनका आपस में परिचय कराया—

"फ़्रेडी, इनसे मिलो, ये हैं मेरे बचपन के दोस्त फ़्रेड" और

"फ़्रेड, इनसे मिलो, ये हैं मेरी जिगरी दोस्त फ़्रेडी।"

फ़्रेडी और फ़्रेड के बीच दोस्ती की एक मुस्कान अनायास खिंच गयी, इसकी साक्षी मेरे साथ-साथ कमरे की हर एक चीज भी थी।

—वन्दना

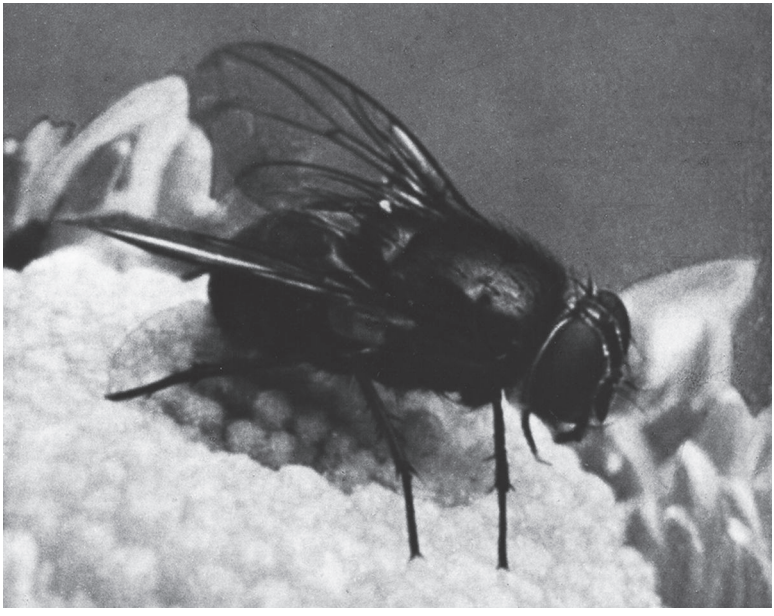

प्रश्न : मां, हमारे योग में, पशुओं के प्रति हमें कैसा मनोभाव अपनाना चाहिये?

उत्तर : सच्चा मनोभाव केवल तभी आ सकता है जब तुमने भागवत एकात्मता की चेतना को पा लिया हो; तब तक के लिए हमेशा यही अच्छा होता है कि पशुओं के साथ सम्मान, प्रेम और करुणा के साथ व्यवहार किया जाये।

ऑरोयूथ

श्रीअरविन्द सोसायटी का उपक्रम

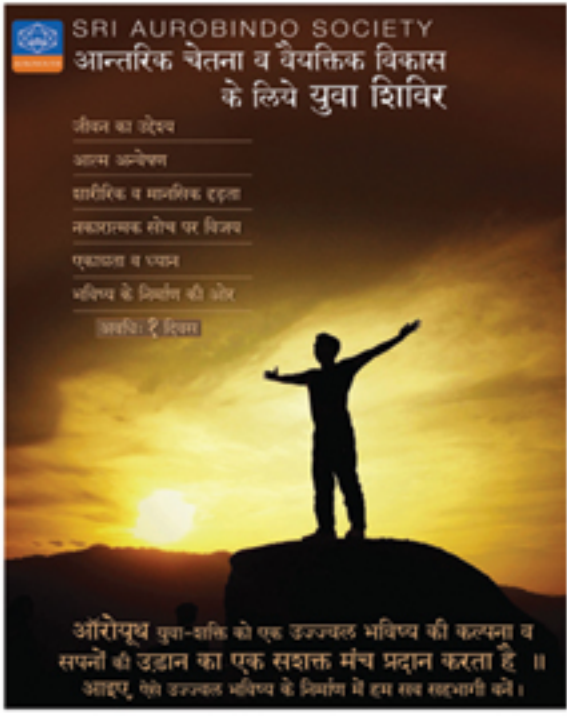

ऑरोयूथ युवा शक्ति को वैयक्तिक विकास, शारीरिक और मानसिक दृढता, अन्वेषण, उज्जवल भविष्य की कल्पना व सपनों की उड़ान का एक मंच प्रदान करता है । साथ ही ऑरोयूथ श्री अरविन्द के सन्देश को युवा पीढ़ी तक पहुँचाने का एक सशक्त माध्यम भी है ।

विगत एक वर्ष में हिन्दी भाषा राज्यों मे श्रीअरविन्द सोसायटी की अधिकांश शाखा व केन्द्रों में ऑरोयूथ युवा प्रभारी नियुक्त हो गये हैं। व देश के विभिन्न भागों में "आन्तरिक चेतना व वैयक्तिक विकास" के विषय पर लगभग ५० शिविरों के माध्यम से हमने १००० से अधिक युवाओं को स्पर्श किया है ।

आप भी ऑरोयूथ में सक्रिय भाग ले सकते हैं।

१. आप १५-२१ की आयु के युवा हैं व ऑरोयूथ युवा शिविर में भाग लेना चाहते हैं?

२. इच्छुक हैं कि आपके परिवार के युवा सदस्य ऑरोयूथ शिविर में भाग ले?

३. किसी कालेज या उच्च शिक्षण संस्थान में ऑरोयूथ युवा शिविर के आयोजन में सहयोग कर सकते हैं?

४.४० के कम उम्र के हैं व ऑरोयूथ ट्रेनर बन कर अपने में सक्रिय सहयोग देना चाहते हैं?

यदि उत्तर हां है तो श्री अरविन्द सोसायटी की निकटस्थ केन्द्र व शाखा अथवा हमसे सम्पर्क करें ।

AuroYouth Desk, Sri Aurobindo Society

Sri Aurobindo Bhavan, C-56/36 Sector 62, Noida - 201 307, Uttar Pradesh.

E: auroyouth@aurosociety.org W: https://ay.aurosociety.org

उनकी कृपा का स्पर्श कठिनाई को सुयोग में, विफलता को सफलता में और दुर्बलता को अविचल बल में परिणत कर देता है। भगवती माँ की कृपा परमेश्वर की अनुमति है, आज हो या कल, उसका फल निश्चित है, पूर्वनिर्दिष्ट अवश्यंभावी और अनिवार्य है ।

– श्रीअरविन्द

अमरनाथ शिक्षण संस्थान, मथुरा (उ.प्र.)

फोन– 0565–3240006, 9358340375

Website : anvaschool.org, Email-amarnath.mtr1@rediffmail.com

Date of Publication: 1st September 2016
Rs. 15.00 (Monthly) Registered: SSP/PY/47/2015-2017
RNI No.18135/70 WPP No.TN/PMG/(CCR)/WPP-472/15-17

A school by The Vatika Group vatika

Holistic

"MatriKiran believes in holistic development and Yoga, Clay Modelling, Indian Music and Ballet are part of its curriculum. The need for extra classes does not arise at all."

Upasana Mahtoni Luthra
Mother of Nanak, Grade 4 and Nritu Luthra, Grade 6

Nature Friendly

"Being a doctor myself, it was very important for me that the school environment should be healthy. Class rooms in MatriKiran are nature friendly, spacious, well ventilated and they open out to green spaces... in communion with nature."

Dr Nidhi Gogia
Mother of Soham Sharma, Grade 1

ADMISSIONS OPEN
Academic Year 2016-17

MatriKiran

Junior School SOHNA ROAD
Pre Nursery to Grade 5

Senior School VATIKA INDIA NEXT
Grade 6 to Grade 8

www.matrikiran.in | +91-124-4938200, +91-9650690222
Junior School: W Block, Sec. 49, Sohna Rd, Gurgaon • **Senior School**: Sec. 83, Vatika India Next, Gurgaon